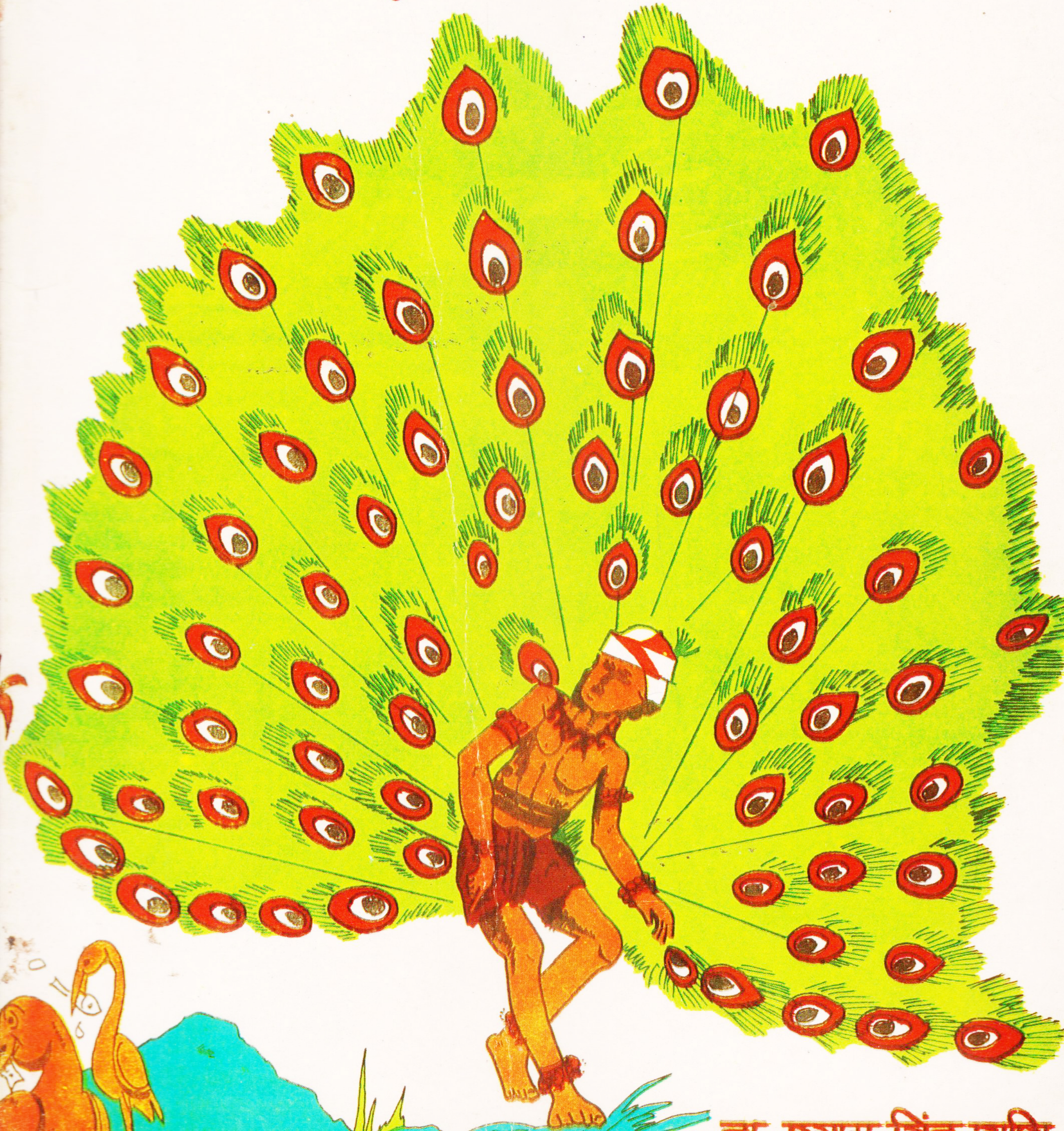
जंगल में मोर नाचा



डा. श्याम सिंह शशि

हमारे आदिवासी (भाग-2)

जंगल में मोर नाचा

डा॰ श्याम सिंह शशि

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण :श्रावण 1910 (अगस्त 1988)
पुनर्मुद्रण : अग्रहायण 1912 (नवम्बर 1990)

मूल्य : 8 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

बंगाल आफसैट वर्क्स, करौल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

लेखकीय

— वर्षों पूर्व हिमालय की यायावर जनजातियों का अध्ययन आरम्भ किया तो बस फिर शोध-यात्राएं चलती रहीं—एक के बाद एक। महानगर के जीवन में भी मन उनके बीच पहुंच जाता और कुछ नया खोज लाता।

— यात्राएं देश-विदेश ले जाती गईं।

— अध्ययन की दिशा नए आयाम लेती गई। बड़ों के साथ बच्चों का अध्ययन भी जारी रहा।

— कभी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' तथा 'चिलड्रन्स वर्ल्ड' के लिए आदिवासी बच्चों पर हिन्दी-अंग्रेजी में ढेर सारे लेख लिखे थे। सन् 1970-71 में ये पत्र-पत्रिकाओं में छपे। कुछ हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, पंजाबी, तेलगु, तमिल, मराठी तथा बंगाली में भी अनूदित हुए।

— फील्ड पब्लिसिटी के अनुभव ने और अधिक इज़ाफ़ा किया। दक्षिण भारत की कई यात्राओं में अध्ययन को नया चिन्तन मिला।

— और इसी चिन्तन का परिणाम था—'हमारे आदिवासी'-श्रृंखला के अंतर्गत कुछ पुष्प। 'हमारे आदिवासी' के प्रथम भाग 'हिमालय के यायावर' के साथ ही उसका दूसरा भाग 'जंगल में मोर नाचा' बच्चों के लिए प्रस्तुत है। 'अवर ट्राइबल चिलड्रन' से कुछ आगे की शोध का परिणाम है— यह बालकृति। मुझे आशा है, यह बच्चों को ही नहीं, बड़ों को भी उसी तरह भाएगी। कुछ नया सोचने को बाध्य करेगी। देश और समाज की प्रगति में भी नन्हा-सा योगदान सिद्ध होगी।

— इस पुस्तक में खोंड, भील, गोंड, बैगा, मुड़िया, टोडा, नागा, संथाल, जारवा, गद्दी, घुमंतू आदि जनजातियों के बच्चों की जीवन-कथाएं हैं।

— श्री बड़ठाकुर तथा श्री रमेश नारायण तिवारी को पहले ही धन्यवाद दे चुका हूं जिनके आग्रह पर यह सीरीज तैयार हुई थी।

— देश के करोड़ों बच्चों को समर्पित यह स्नेह-पुष्प।

— (डा०) श्याम सिंह शशि

ऋचा-समता-लोकराज को

अनुक्रम

1. जंगल में मोर नाचा

श्रीकाकुलम का एक बियाबान जंगल। दुर्गम पहाड़ी रास्ता। वन्य पशुओं की डरावनी आवाजें। कहीं कोई भालू गुर्राता तो कहीं चीता चिंघाड़ता। वृक्षों पर कौवे, तोते, कबूतर आदि पक्षी अलग-अलग आवाजें निकालते। बंदर और लंगूर भी दिखाई पड़ते।

ऋचा जंगल में अकेली छूट गई थी। माता-पिता पीछे रह गए थे। आलोक और अनिल अब साथ नहीं थे। वह अपने दोनों भाइयों के साथ पिकनिक के लिए गई थी, लेकिन पता नहीं वे कहां चले गए!

अचानक एक शेरनी दहाड़ती हुई आई। उसके साथ एक छोटा बच्चा भी था। दोनों ऋचा के सामने आकर खड़े हो गए।

शेरनी बोली, "हम दोनों दो दिन से भूखे हैं। अच्छा हुआ आज तू मिल गई। अब तुझे खाकर ही भूख मिटा लेंगे।"

ऋचा एक बार तो भय से कांप उठी। लेकिन दूसरे ही क्षण संभल गई। वह बड़ी बहादुरी से उसकी ओर बढ़ी। उसने देखा, शेरनी मुंह फाड़े सामने खड़ी है। ऋचा ने अपना एक हाथ उसके मुंह में ठूंस दिया और दूसरे से उसका टेंटुआ दबा दिया।

बात ही बात में शेरनी ढेर हो गई। उसका बच्चा दुम दबा कर भाग गया।

तभी कहीं से ऋचा के दोनों भाई भी वापस आ गए।

तीनों ने किसी मोर के बोलने की आवाज सुनी। पर यह आवाज मोर की होते हुए भी मोर जैसी नहीं थी।

ऋचा हड़बड़ाकर नींद से जागी। उसने वास्तव में जंगल का भयानक सपना देखा था। सपने में भी उसने बड़ी वीरता दिखाई थी।

वह दौड़ी-दौड़ी अपने पापा के पास— यानीं मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

"पापा, पापा, आज तो कमाल ही हो गया। मैंने एक शेरनी को मार दिया। और तो और शेर के बच्चे को भी भगा दिया।"

ऋचा की इस बात पर मैं अपनी हंसी नहीं रोक सका।

"नहीं नहीं, पापा, मैंने सचमुच शेरनी को मारा है। सपने में मारा है।" ऋचा अपनी शेखी बघारने लगी।

"अच्छा, तो अब चाहती क्या हो?"

मेरे इस प्रश्न पर उसने कहा—

"पापा, एक बार आपने श्रीकाकुलम और विशाखापत्तनम के आदिवासियों के बारे में कहा था कि वे मोर की आवाज निकालते हैं। मैंने वह आवाज सपने में सुनी है। क्या वह उनकी ही आवाज तो नहीं थी?"

"हां, बेटे, तुमने ठीक ही सुना। वह आवाज वहां के खोंड लोगों की रही होगी। वे मयूर नृत्य करते हैं। मोरपंख के गुच्छे कमर के पीछे बांधते हैं। वे जब आगे झुकते हैं तो मोर की पूंछ जैसे लगते हैं। नाचते समय तो पता ही नहीं चलता कि आदमी नाच रहे हैं या सचमुच के मोर। वे मोर जैसी आवाजें भी निकालते हैं। यही आवाज तुमने सपने में सुनी होगी।" मैंने बात आगे बढ़ाई—



''खोंड नर्तक पैरों में छोटी-छोटी घंटियां बांधते हैं और कड़े भी पहनते हैं जिन्हें मुय्यंगम कहा जाता है। वे सिर पर घास की बनी पगड़ी पहनते हैं जिसे तोयंगम के नाम से पुकारा जाता है। इस पगड़ी पर कपड़े की रंग-बिरंगी कतरनें लगी होती हैं।



''खोंड एक प्रकार की बांसुरी बजाते हैं जिसे वे 'पिरोडी' कहते हैं।

''पहले सभी नर्तक दो पंक्तियों में खड़े होते हैं। फिर एक घेरा बनाते हैं और घुटनों के बल आगे झुकते हैं जिससे उनकी शक्ल मोर की तरह दिखाई पड़ने लगती है। सभी नर्तक नृत्य से पहले धरती माता और सूर्य भगवान की वंदना करते हैं। अपनी हथेलियों को मुंह पर रखते हैं तथा मोर की आवाज निकालते हैं। कभी दाईं टांग पर खड़े होते हैं तो कभी बाईं पर। कड़ों तथा घंटियों की मधुर ध्वनि से संगीत जैसा सुनाई पड़ता है। पिरोडी की मीठी तान के साथ आगे-पीछे चलते हैं। कभी बैठते हैं। कभी घेरे में घूमते हैं। कभी झुकते हैं तो कभी रुमाल हिलाते हैं। बस ऐसा लगता है कि जंगल में मोर-ही-मोर नाच रहे हों।''

''और मोरनी नहीं?'' अचानक ऋचा ने मेरी बात काट दी और बोली, ''अरे पापा, बस

करो न! इतना लम्बा भाषण दे डाला। मैं एक मोर की बात कर रही थी। आपने तो कितने ही मोरों को गिनाना शुरू कर दिया। अब बताओ, मोरनी क्यों नहीं नाचती?

''मुझे नहीं पता? तुम अपने अध्यापक से पूछना।'' मैंने बात बदली।

''अच्छा, आपको इस बारे में कुछ नहीं आता-जाता। अब अपने विषय पर बात करो। जरा खोंड जाति के जीवन के बारे में भी कुछ बताओ।'' ऋचा बोली।

इसी बीच समता और लोकराज भी आ गए थे।

लोकराज बोला—''हां हां, अंकल, आप अकेले-अकेले पहाड़ों और जंगलों में घूमते रहते हो। हमें कभी साथ नहीं ले जाते। आज हमें जंगली लोगों की कहानियां सुनाओ न।''

समता बोली, ''चुप, जंगली की गाली क्यों देते हो?''

मैंने कहा, ''समता, तुम बड़ी समझदार हो, बेटे। जंगल में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति जंगली नहीं होता और न ही गांव में रहने वाला आदमी गंवार। नगर में रहने वाले अपराधी जंगली से भी बुरे होते हैं और इसी तरह अन्य शहरी उजड्ड गंवार हो सकते हैं। जंगल और पहाड़ों में आज भी भोले-भाले लोग रहते हैं, नगर के छल-कपट को वे नहीं समझते।''

ऋचा बोली, ''अरे पापा, आप हमें सीधे-सीधे खोंडों के बारे में कुछ बताओ।''

मैंने कथा आगे बढ़ाई—

''अच्छा भई, लो सुनो। अर्कू घाटी विशाखापत्तनम जिले का सुंदर पहाड़ी क्षेत्र है। यहां बगट, कोटिया और खोंड जनजातियां रहती हैं। सैलानियों के लिए ये सब एक जैसे लगते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। इनके अलग-अलग रीति-रिवाज हैं। खान-पान अलग है और बोलियों में भी कुछ अंतर है।

''खोंड आंध्र प्रदेश के अतिरिक्त बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश में भी पाए जाते हैं। वे द्रविड़ होते हैं। रायपुर जिले में वे कुइलोका कहलाना पसंद करते हैं। ये लोग शासक भी रहे हैं। कालाहांडी में पिछले दिनों तक रिवाज था कि जब वहां का राजा गद्दी पर बैठेगा तो पहले उसे किसी खोंड आदिवासी की गोद में बैठना पड़ेगा। राजा को एक खोंड युवती को रानी भी बनाना पड़ता था। यही कारण है कि बहुत-से खोंड बड़े-बड़े जमींदार भी हैं।

''इस जनजाति के दो मुख्य वर्ग है— 1. कुटिया पहाड़ी खोंड, 2. मैदानी खोंड। इन्हीं खोंडों के उपवर्ग भी हैं, पर वे प्रायः उक्त दोनों वर्गों में से ही हैं।

''मैदानी खोंडों ने हिन्दू धर्म अपना लिया है। उनमें जो राज खोंड होते हैं, वे ऊंचे माने जाते हैं। दल खोंड सैनिकों के वंशज माने जाते हैं।

''पखिया खोंड भैंस का मांस खाते हैं, लेकिन नौरिया खोंड घास-पात पर निर्भर रहते हैं। नगला खोंडों के पास वस्त्र न के बराबर होते थे, अतः वे नगला अर्थात नग्न खोंड कहलाए।

''खोंड कभी केवल घोड़े पालते थे। उन्हें दूसरे काम-धंधे पसंद नहीं थे। उनमें कभी बलि-प्रथा भी प्रचलित थी। अच्छी फसल उगाने के लिए यह प्रथा शुरू हो गई थी। इस प्रथा के शिकार बच्चे होते थे।

''धीरे-धीरे अंधविश्वास समाप्त हुए और इस बलि-प्रथा का भी अंत हो गया।''

''अरे बाप रे, बच्चों को मार दिया जाता था! बड़ा बेरहम समाज है यह!'' ऋचा बीच में ही बोल उठी।

''नहीं, बेटे, ऐसा नहीं है। उस समाज में उतना कुछ भी नहीं, जितना आज के सभ्य समाजों में देखने में आता है। तुम समाचार-पत्रों में पढ़ती रहती हो कि आज उत्तर प्रदेश के किसी नगर में एक बच्चे की बलि दी

गई। राजस्थान में तो कभी कन्याओं को जन्म के समय ही मार दिया जाता था। बिहार तथा अन्य प्रदेशों में भी अंधविश्वासों की कमी नहीं। सती प्रथा को ही देख लो। आज भी कुछ लोग इस घृणित कार्य का पक्ष लेते हैं। खोंड लोगों में ऐसी प्रथाएं तो कभी नहीं रहीं।

''आज खोंड अन्य समाजों की तरह आगे बढ़ रहे हैं। हां, प्रगति जितनी होनी चाहिए, उतनी तो नहीं हो रही है।

''खोंडों के बच्चे अब स्कूल पढ़ने जाते हैं। कुछ खोंड अध्यापक तथा अन्य पदों पर भी काम कर रहे हैं। बनवासी सेवा मंडल तथा अन्य सरकारी-गैर सरकारी संस्थाएं इन लोगों के कल्याण के लिए काम कर रही हैं।''

लोकराज जोर-जोर से गाने ने लगा—

''जंगल में मोर नाचा
किसी ने न देखा।''

समता गुनगुनाने लगी—

''जंगल में मोर नाचा
हम सबने देखा
गणतंत्र दिवस पर
टी.वी. पर भी देखा।''

ऋचा बोली, ''पापा, आदिवासी बच्चों की जो कहानियां आप आलोक, अनिल और रेखा को सुनाया करते थे, हमें भी सुनाइए न?''

और मैं उन सच्ची कहानियों को आज फिर दोहराने लगा। बस अब पात्र बदल गए थे। हां, रीति-रिवाजों में भी कुछ परिवर्तन आने लगे। प्रगति हुई, पर उसकी गति बहुत धीमी है आज भी।

2. धनुष-बाण ले हाथ

ठक्कर बापा की डायरी का एक पृष्ठ कहता है — ''भीलों का अतीत कितना गौरवमय रहा है। जिस जाति ने महाराणा प्रताप का साथ कठिन-से-कठिन समय में नहीं छोड़ा और जो मेवाड़ राज्य की प्रधान सहायक रही है, वही जाति आज दीन भाव से हमारी ओर अपने सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और शैक्षणिक विकास के लिए देख रही है। क्या हम अपनी सहायता का हाथ उनकी तरफ नहीं बढ़ाएंगे?''

ठक्कर बापा की इन पंक्तियों को मैं पूरी तरह पढ़ भी नहीं पाया था कि ऋचा, समता और लोकराज तीनों बच्चे आकर फिर जम गए। मैंने पूछा—''बच्चो, तुममें से भीलों का नाम किस-किस ने सुना है, जरा बताओ तो सही।''

''भील का नाम नहीं सुना पर भीलनी का जरूर सुना है, अंकल।'' समता बोली।

''अच्छा, बोलो, तो वह कौन थी?'' मैंने कहा।

''रामायण की कथा में पंडितजी ने बताया था कि बनवास के समय राम और लक्ष्मण से एक भीलनी मिली थी, जिसका नाम शबरी था। वह बड़ी काली-कलूटी थी। वह अपनी बेरी के बेर तोड़कर लाई और उनमें से कुछ बेरों को जूठा कर दिया और फिर उन्हें राम और लक्ष्मण के सामने रख दिया। लक्ष्मण ने तो एक बेर भी नहीं छुआ, लेकिन रामचंद्रजी बड़े चाव से खाने लगे। अब लक्ष्मण ने कहा कि वे पिताजी से शिकायत कर देंगे तो राम मन-ही-मन मुस्करा उठे...'' समता कहे जा रही थी।

''रामचन्द्रजी गन्दे थे न, जो भीलनी के जूठे बेरों पर ही ललचा गए।'' लोकराज ने बात काटते हुए कहा।

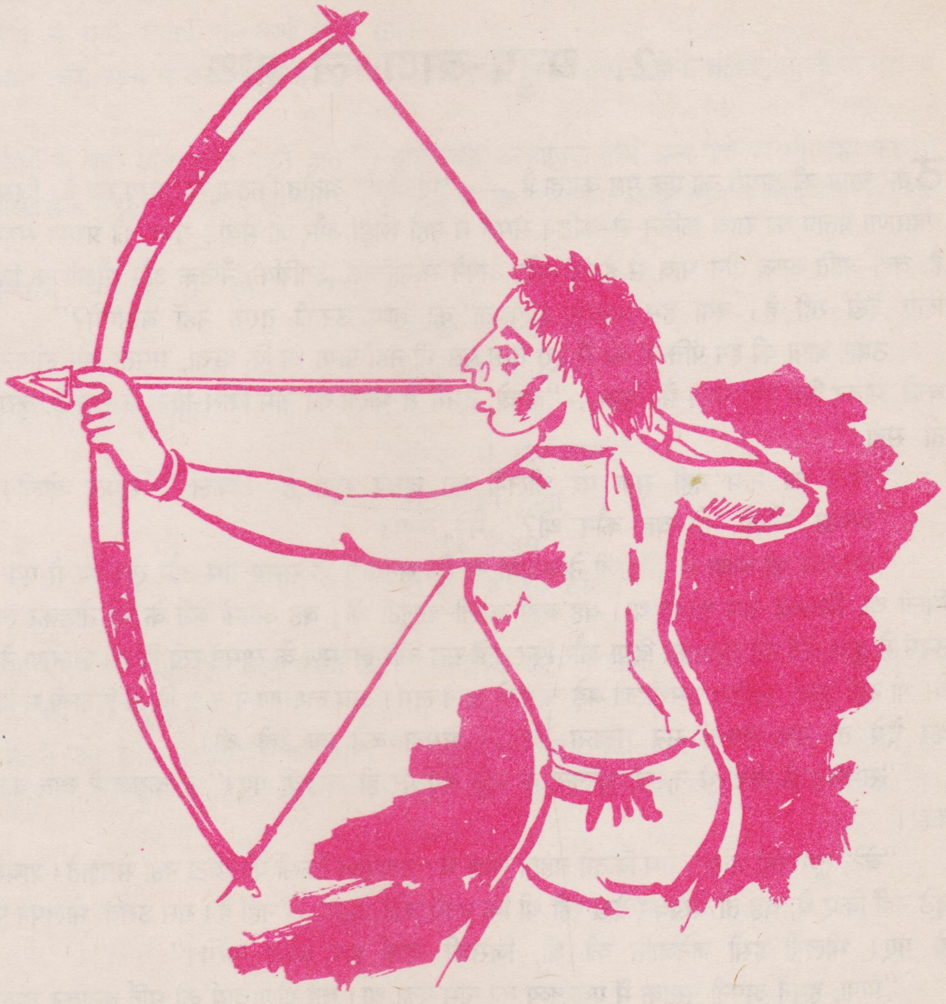
''बेटे, तुम नहीं जानते, राम कितने महान पुरुष थे। महापुरुष किसी को छोटा नहीं समझते। शबरी ने बेर जूठे नहीं किए थे, वह तो चखकर देख रही थी कि उनमें कोई खट्टा तो नहीं है। राम उसके भोलेपन पर मुग्ध हो गए। भीलनी इसी जनजाति की थी, जिसकी चर्चा हम आज करेंगे।''

''पापा, हमने अपनी पुस्तक में एकलव्य का नाम पढ़ा था। वह द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर धनुष-विद्या सीखा करता था। जब गुरु दक्षिणा का समय आया तो उसने अपना अंगूठा काटकर गुरु को भेंट कर दिया। क्या वह इसी भील जाति का बालक था?'' ऋचा ने प्रश्न किया।

''तुम ठीक कहती हो, वह इसी जनजाति का शूरवीर बालक था। महाभारत में इस घटना का जिक्र आता है। बाप्पा रावल का नाम सुना है न! जब वह तीन वर्ष का था तो उसे जंगल में ले जाकर भीलों को सौंप दिया गया। उन्होंने ही उसे पाला था। बाद में उसी ने राजपूत राज्य की नींव डाली थी। इस जाति का इतिहास सदा से बहादुरी और दिलेरी का रहा है। 'बील' द्रविड़ भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'कमान' होता है। वास्तव में धनुष-बाण चलाने में होशियार होने के कारण इस जाति का नाम 'भील' पड़ा है।''

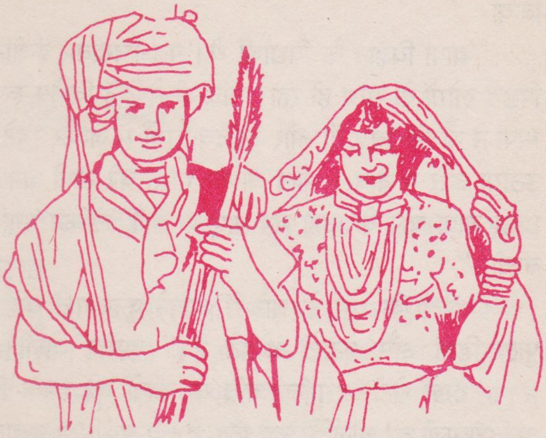
''इनके रीति-रिवाज और रहन-सहन के बारे में तो बताइए न!'' लोकराज बोला।

''अच्छा तो सुनो, भील जाति राजस्थान और मध्यप्रदेश के अतिरिक्त बम्बई, आंध्र प्रदेश तथा उत्तर



प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में भी पाई जाती है। ये अक्सर पहाड़ों पर अलग-अलग घर बनाकर रहते हैं। प्रत्येक गांव में एक 'भीलवाड़ा' होता है। बस्ती को 'पाल' कहा जाता है और उसके मुखिया को 'गमेती' कहते हैं। उसके अधिकार गांव के सरपंच से भी अधिक होते हैं।

"भीलों का मुख्य पेशा खेती, पशु-पालन, लकड़ी काटकर बेचना और शहद इकट्ठा करना है। इनकी खेतीः कुछ विचित्र प्रकार से की जाती है। ढालदार स्थान के हरे-भरे पेड़ों को काटकर गिरा दिया जाता है और उन्हें जलाकर खाद बना ली जाती है। फिर उसी स्थान पर खेती की जाती है। भील लोग बड़े परिश्रमी, सच्चे, निडर और पराक्रमी होते हैं। स्वामिभक्ति में ये अनुपम हैं। इनकी वफादारी के उदाहरण राजस्थान के इतिहास में भरे पड़े हैं। वास्तव में यह जाति अपनी बात की बड़ी धनी रही है। जिसको अपना कह दिया, उसके लिए अपनी जान की बाजी लगा दी। यही इनकी विशेषता है।



''भीलों का भोजन मक्का, ज्वार, जौ और कोदों है। जंगल के बेर, महुआ आदि फल भी इनका भोजन हैं। ये शराब पीते हैं और मांस खाते हैं। यहां का आदिवासी खेती पर पूरी तरह से निर्भर नहीं रह सकता, क्योंकि यहां वर्षा के अभाव के कारण कई बार अकाल तक की नौबत आ जाती है। वैसे भी राजस्थान का यह क्षेत्र पैदावार की दृष्टि से बहुत अच्छा नहीं है। भीलों को बहुत कठोर जीवन बिताना पड़ता है। इनकी खेती का ढंग 'बालरा' कहलाता है।

''इस जनजाति का रहन-सहन बिल्कुल सीधा-सादा है। मोटा खाना और मोटा पहनना इनके जीवन का सिद्धांत है। ये घुटनों तक की धोती पहनते हैं। सर पर साफा और शरीर पर बंडी पहनी जाती है। भीलनी लहंगा पहनती हैं। वे छाती ढकने के लिए चोली पहनती हैं। इनके आभूषण पीतल के होते हैं। आजकल सोने-चांदी का चलन भी हो गया है लेकिन बहुत कम! अन्य ज़नजातियों की तरह शरीर पर गुदवाना भी यहां सामान्य प्रथा है।

''इनके बच्चे इनके कामों में खूब हाथ बटाते हैं। बचपन से ही भील बालक तीर-कमान चलाने में निपुण हो जाता है। वह आखेट में भी कभी-कभी अपने पिता के साथ जंगल जाता है और शिकार पर सही निशाना लगाना सीख लेता है। स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या बहुत कम है। 13-14 वर्ष के बाद उनके मां-बाप उन्हें स्कूल से हटा लेते हैं क्योंकि उस आयु में वे अपने मां-बाप के काम में हाथ बटाने योग्य बन जाते हैं। वास्तव में इन बच्चों को अपने मां-बाप के काम में हाथ बटाना पड़ता है। अब जनजातियों का ध्यान भी शिक्षा की ओर कुछ-कुछ जा रहा है लेकिन उसमें मीणा वर्ग ही आगे रहा है। इस वर्ग में अब काफी संख्या में युवक शिक्षित हो गए हैं तथा अच्छे पदों पर भी हैं। पर गांव का भील आज भी बहुत पिछड़ी दशा में है।

''भील आदिवासी आश्रम की एक अध्यापिका ने मुझे बताया था कि जिन भील बच्चों को वह पढ़ाती हैं वे बड़े शर्मीले और भोले-भाले हैं। जब वे उनसे किसी प्रश्न का जवाब पूछती हैं तो वे उत्तर देते हुए झिझकते हैं। यदि किसी की समझ में कोई प्रश्न नहीं आया तो भी वह अपनी तरफ से कभी नहीं पूछेगा और न ही प्रश्न का उत्तर देने में शीघ्रता करेगा। वास्तव में इसका कारण उन बच्चों की अयोग्यता नहीं है बल्कि भाषा की कठिनाई है जिसके कारण भी वे इतने संकोची बन जाते हैं। हिन्दी या अंग्रेजी—दोनों ही उनके लिए दूसरी भाषाएं हैं।''

''आपने शुरू में ठक्कर बापा का नाम लिया था। क्या उन्होंने इन भीलों में रहकर बहुत काम किया था! बापा कौन थे, पापा!'' ऋचा बोली।

''तू नहीं जानती— वे बापू के पापा होंगे। और क्या?'' लोकराज़ ने कहा।

''नहीं, नहीं, वे तो भीलों के पापा होंगे—भीलों के।'' समता बात काटते हुए बोली।

मैं अपनी हंसी न रोक सका और बच्चों की तू-तू, मैं-मैं बढ़ती देखकर बापा के बारे में कुछ बताना शुरू किया।

''बापा विज्ञान के विद्यार्थी थे। पढ़-लिखकर इंजीनियर बन गए। लेकिन उनका दिल सदा छोटे और पिछड़े लोगों के साथ ही रहा। गांधीजी ने उन्हें विशेष रूप से आदिम जातियों में काम करने की सलाह दी। बापा ने नौकरी छोड़ दी और आदिवासियों में जाकर रहने लगे। उन्होंने समाज-सेवा का बीड़ा अपने हाथ में उठाया और न केवल भील बल्कि भारत की सभी जनजातियों की भलाई के लिए अपना योगदान दिया। ठक्कर बापा बापू के पापा बन पाए या नहीं, लेकिन आदिवासियों के सच्चे पापा अवश्य बन गए। समझे, बच्चो !''

''भीलों के धर्म के बारे में आपने कुछ नहीं बताया ! क्या इनके बच्चे भी हमारी तरह दीवाली पर फुलझड़ियां और पटाखे छोड़ते हैं।'' समता बोली।

''देखो बेटी, इस जनजाति के बच्चों को इनके पिता इतना पैसा नहीं देते कि ये अपनी मर्जी से आतिशबाजी की चीजों में उसे फूंक दें। फुलझड़ियां छुड़ाकर तुम दो मिनट के लिए बहुत खुशी मनाती हो न, लेकिन उस बेचारे भील के बच्चे के बारे में तुम कभी नहीं सोच सकतीं कि दीवाली पर उसे कोदों की पूरी रोटी ही मयस्सर हुई है। तुम नहीं जानतीं कि उसके तन पर ढकने को पूरे वस्त्र तक नहीं हैं, फिर भला वह इन सब फिजूल की चीजों के लिए पैसा कहां से लाएगा !''

''तो क्या ये सब फिजूल की चीजें हैं ! दीवाली पर तो हम बहुत-से रुपये आतिशबाजी में ही खर्च कर दिया करते हैं।'' लोकराज ने शंका प्रकट की।

''देखो, बच्चो, जब तक तुम्हारे देश के दूसरे बच्चे भूखे-प्यासे हैं, जब तक उनके शरीर पर पूरा कपड़ा ढकने को नहीं होता और जब तक उनके रहने के लिए मकान नहीं बन जाता, तब तक आतिशबाजी जैसी चीजों में पैसा फूंकना फिजूलखर्ची ही होगा।''

''हम इन आदिवासी बच्चों की सहायता कैसे कर सकते हैं, पापा?'' ऋचा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

''आजकल जनजातियों के कल्याण के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार की अनेक संस्थाएं काम कर रही हैं। समाज कल्याण विभाग, आदिम जाति सेवक संघ, घुमंतू जनजाति संघ, सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी, आदि कई संस्थाएं हैं। 'कल्याण कोष' के लिए तुम अपनी फिजूलखर्ची से कुछ पैसा बचाकर उन्हें भेज सकते हो। वास्तव में इस पैसे से तुम्हारे कुछ आदिवासी भाइयों को दीवाली पर कम-से-कम गुड़ की मिठाई तो मिल ही सकेगी।'' मैं बोलता जा रहा था।

तीनों बच्चों ने शोर मचाया—

''अब हम दीवाली पर पटाखे नहीं छोड़ेंगे। पैसा बचाएंगे और इन बच्चों को भेजेंगे।''

मैंने सबको शाबाशी दी। समता के प्रश्न का उत्तर अधूरा ही रह गया था, उसे पूरा करने लगा—

''बच्चो, भील लोग होली, दीवाली, दशहरा आदि त्योहार हिन्दुओं की तरह ही मनाते हैं। गुजरात के भील 'आमली एकादशी' और 'जन्माष्टमी' भी मनाते हैं। वास्तव में ये सच्चे हिन्दू हैं। अन्य आदिवासियों की तरह नृत्य और गीतों के द्वारा ये भी अपना मनोरंजन करते हैं। किन्तु तीर-कमान तो इनके दैनिक जीवन का अंग ही बन गया है। कितने शूरवीर हैं ये भील और उनके वीर बालक !''

3. मां का प्यार

एक गोंड वृद्ध ने मुझे एक लोक कथा सुनाई थी। तीनों बच्चे मेरे इर्द-गिर्द इकट्ठे होकर लोक कथाएं सुनाने को मजबूर करने लगे तो मैंने निम्न कहानी सुनाई।

''एक नन्हा गोंड बालक खेत में अकेला लेटा हुआ था। उसकी मां शहद इकट्ठा करने में लगी थी। घर में कोई और नहीं था, इसलिए वह अपने बच्चे को साथ ले आई थी। अचानक एक सांप उधर से गुजरा। मां अपने काम में लगी थी। रोने की आवाज सुनकर वह अपने बच्चे के पास गई तो देखा, बच्चे को सांप ने डस लिया है। उसने मृत बच्चे को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और कई दिन तक उसे उसी तरह



चिपटाए रखा। कहते हैं, उसका वात्सल्य-प्रेम देखकर पार्वती का दिल भी पिघल गया। उन्होंने शिवजी से प्रार्थना की कि वह मृत बालक को जिन्दा कर दें। शिवजी महाराज मान गए और बच्चा जीवित हो गया। गोंड माता खुशी से नाच उठी।''

समता बोली—''अंकल, क्या वहां की माताएं अपने बच्चों से इतना ज्यादा प्यार करती हैं कि मरे हुए बच्चों को भी अपनी छाती से चिपटाए रखती हैं? मेरी मम्मी तो जरा-जरा-सी बात पर मुझे डांटती रहती हैं और जब गुस्सा आता है तो चांटा भी रसीद कर देती हैं।''

लोकराज और ऋचा ने भी हां-में-हां मिलाई।

मैंने कहा— ''देखो बच्चो, मां-बाप अपने बच्चों को बिना बात न तो डांटते हैं और न ही दंड देते हैं। गोंड बच्चों के सभी मां-बापों को यह चिन्ता नहीं कि उनके बच्चों को पढ़-लिखकर बहुत आगे बढ़ना है या किसी विषय का विशेषज्ञ बनना है। उन्हें तो अपने बच्चों को मेहनत द्वारा किसान बनाना है या जंगल के वातावरण में जीवन-यापन के लिए तैयार करना है।



''इनके बच्चे शुरू से ही मेहनत करना सीख लेते हैं। ये अपने मां-बाप के साथ शहद इकट्ठा करते हैं। पेड़ काटने या खेती आदि कामों में हाथ बटाते हैं। वे तीर-कमान चलाने का प्रशिक्षण लेते हैं ! पुराने ढंग के शस्त्रों का प्रयोग भी इन्हें खूब आता है। मां यदि अपनी लड़की को घर के काम-काज में निपुण करती है तो पिता अपने बालक को खेती करने के तरीके और अपनी रक्षा के लिए शस्त्रों का प्रयोग करना सिखलाता है। छोटे बच्चों की माताएं उन्हें कपड़े की झोली में लिटाकर कमर पर लटका लेती हैं तो पिता उन्हें बांस की टोकरी में लिटाकर कंधों पर लटका लेता है। गोंड़ वास्तव में अपने बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।''

ऋचा बोली—''आपने इनके रीति-रिवाजों और जीवन के बारे में कुछ नहीं बताया?''

''उनके रीति-रिवाजों और जनजीवन के बारे में संक्षेप में बताता हूं—तुमने मध्य प्रदेश के सतपुड़ा पहाड़ का नाम जरूर सुना होगा। गोंड लोग उसी के आस-पास काफी दूर तक बसे हुए हैं। गोंडों की अधिक संख्या होने के कारण इस इलाके को गोंडवाना कहा जाता है। राजगोंडों का शासन यहां काफी समय तक रहने के कारण गोंड जनजाति को क्षत्रिय का दर्जा मिला। इनके दो प्रमुख वर्ग हैं: 1. हिन्दू गोंड, 2. आदिवासी गोंड।

''हिन्दू गोंडों के रीति-रिवाज हिन्दुओं जैसे हैं। ये होली, दीवाली, दशहरा और रामनवमी हिन्दुओं की तरह ही मनाते हैं और सत्यनारायण की कथा भी कराते हैं। गो-माता की पूजा करते हैं। बहुत-से लोग तो शराब तक नहीं पीते।

''राजगोंडों के विवाह संस्कार ब्राह्मण कराता है। वे अपने गोत्र में शादी नहीं कर सकते। ये तलाक को बुरा मानते हैं।''

''भारत की आदिम जातियों में गोंडों की संख्या सबसे अधिक है। ये लोग न केवल मध्य प्रदेश बल्कि हैदराबाद, बिहार, उड़ीसा और बंगाल तक में फैले हुए हैं। आदिवासी गोंड भूत-प्रेत, जादू-टोना में अधिक विश्वास करते हैं। ये लोग बहुत पिछड़ी स्थिति में हैं। कुछ लोग केवल जंगल में शिकार करके ही अपना पेट पालन करते हैं तथा कुछ शहद इकट्ठा करके बाहर के लोगों को बेच देते हैं।

''राजगोंडों के पास बहुत जमीनें हैं। इनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी है। अब तो उनके बच्चे भी

खूब पढ़ते-लिखते हैं। अगर तुम उनको पत्र लिखो तो तुम्हें वे उसका उत्तर अवश्य देंगे। ये बच्चे पढ़ाई के साथ-साथ अपने मां-बाप के पेशे को भी सीख लेते हैं।

''इनके यहां अनेक स्थानों पर 'घोटुल-घर' बने होते हैं जो वास्तव में तुम्हें विचित्र लगेंगे। इनमें दस साल से ऊपर के लड़के-लड़कियां इकट्ठे मिलकर रहते हैं और अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक जरूरी काम सीखते हैं। पर अब ये घर न के बराबर हैं। तुममें से अगर कोई बच्चा नृविज्ञान पढ़ेगा और इन घरों को देखेगा तो उसे विचित्र प्रकार के अनुभव होंगे।''

''क्या ये बच्चे गाय-भैंस भी रखते हैं?'' लोकराज ने बात काटते हुए सवाल किया।

''हां, हां जरूर, गाय पालना तो इनका धर्म है, किन्तु भैंस का उनके लिए कोई विशेष महत्व नहीं। एक आश्चर्य की बात और सुनो। उत्तर भारत में सुअर पालना प्रायः बाल्मीकि या पासी जाति का पेशा समझा जाता है, लेकिन यहां इन लोगों का यह सामान्य व्यवसाय है। इनके सुअर काफी मोटे-ताजे होते हैं जिनका मांस इन्हें बहुत प्रिय है। इनका एक देवता 'भैंसासुर' कहलाता है जिस पर सुअर के सिर को काटकर बलि चढ़ाई जाती है। सुअर हमेशा आदमी द्वारा ही काटा जाता है, स्त्री द्वारा नहीं।

''कुछ गोंड ऐसे भी हैं जो बकरियां रखते हैं। वे अक्सर इनका दूध नहीं पीते। बकरी के बच्चों का पेट भरने के बाद जो कुछ दूध बचता है उसे वे गाय के दूध के साथ मिलाकर मक्खन बना लेते हैं। बकरियों की बलि भी दी जाती है लेकिन उनके मेमनों की नहीं। आश्चर्य है, ये लोग बकरी तो पालते हैं पर भेड़ों को नहीं।

''गोंड बड़े ईमानदार और दिल के सच्चे होते हैं। यदि बाप ने ऋण लिया है तो बेटा जब तक उसे चुका नहीं देता, चैन नहीं मिलता। इनके लोकनृत्य और लोकगीत बड़े लोकप्रिय हैं।

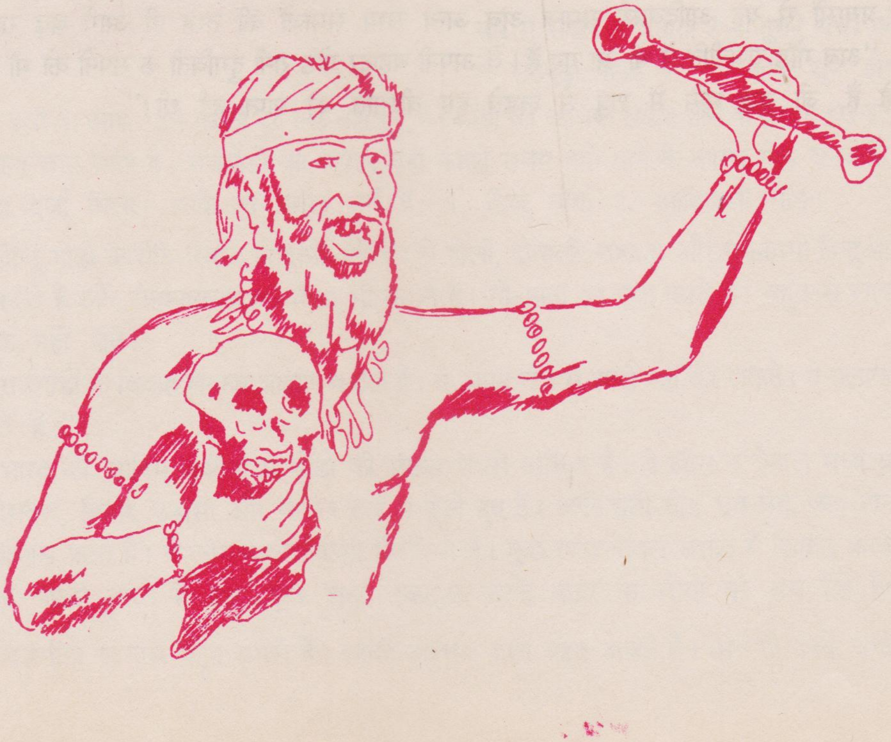
''आजकल गोंड जनजाति में समाज-सुधार की लहर दौड़ रही है। जनजातियों के महान नेता ठक्कर बापा के प्रयत्नों से 'बनवासी सेवा-मंडल' तथा 'आदिम जाति सेवक संघ' जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई थी, जिनके प्रयासों से यह आदिवासी समाज अब अन्य सभ्य समाजों की तरह ही आगे बढ़ रहा है।

''अब गोंड राजनीति में भी आ गए हैं। वे अपनी बहादुर गोंड रानी दुर्गावती के सपनों को भी साकार कर रहे हैं, जो युद्ध-भूमि में शत्रु से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुई थी।''

4. हिटलर पर जादू

बैगा जनजाति में एक लोक कथा प्रचलित है—"नंगा बैगा पहला महापुरुष था। उसने बैगा समाज की स्थापना की थी। उसका जन्म धरती माता से हुआ था। नंगा ठीक वक्त पर दुनिया में आया। ईश्वर ने चपाती की तरह विशाल समुद्रों को फैलाया। सबसे पहले उसने वायु को बुलाया। उसे आदेश दिया कि वह भूमि को दृढ़ करे। वायु अंधी होती है, इसलिए वह उस काम को पूरा न कर सकी। उसने फिर भीमसेन को बुलाया। उसे कहा गया कि वह पर्वतों को सही जगह पर लगा दे। किन्तु भीमसेन का शरीर इतना भारी था कि उसके पैर हमेशा खुरदरी धरती पर ही पड़े। अतः पृथ्वी न तो मजबूत ही बन सकी और न ही स्थिर रही। मकड़ी के जाले की तरह उस समय धरती की दशा थी। अंत में नंगा बैगा को धरती पर भेजा गया। उसने ज्यों ही कदम रखा तो सब चीजें अपनी-अपनी जगह ठीक तरह से आ गई। उसने चार बड़े-बड़े नाखूनों से पृथ्वी के चारों किनारों को पकड़कर घसीटा और इस तरह से धरती पक्की और दृढ़ हो गई। उसके बाद उसने मानव को जन्म दिया। जादू को भी उसी ने चलाया। आदमी पहले अलग-थलग रहता था। अब उसने सामाजिक जीवन जीना शुरू किया। उसने जंगली जानवरों को वश में करने की विधि भी खोज निकाली।

आज भी बैगा दैवी शक्ति से भरे हुए माने जाते हैं। जादू और टोने में इनका कोई सानी नहीं। गोंड



जनजाति के जादूगर जब किसी का इलाज करने में असफल हो जाते हैं तो बैगा की ही मदद ली जाती है। यहां तक कि स्थानीय ब्राह्मण तक उनसे अपना इलाज करवाते हैं। लोगों का विश्वास है कि ओला बरसाते हुए बादल को केवल मंत्रों के बल पर चीरा जा सकता है। खोए हुए माल का पता लगाया जा सकता है। तूफानों को रोका जा सकता है। जंगल में लगी हुई आग को केवल मंत्रों द्वारा बुझाया जा सकता है। न जाने क्या-क्या चमत्कार इस जनजाति के बड़े-बूढ़ों के हाथ में हैं। अगर इनके सामने विश्व के बड़े से बड़े जादूगर आ जाएं तो शायद वे उसे भी जादू के जोर से बंदी बना लेंगे। भला ऐसा भी क्या जादू जो किसी के सर पर चढ़कर न बोले।''

मुझे सिद्धू बैगा ने जब अपने उद्‌गम की यह लोक कथा सुनाई तो मैंने अपनी नोटबुक में उसे लिख लिया था। आज बच्चे कुछ और पूछेंगे, इसलिए उसे पढ़ने लगा था कि ऋचा ने झट से कमरे में प्रवेश किया और एक बालसुलभ प्रश्न किया —

''आप एक दिन कह रहे थे कि आदिम जातियों में जादू-टोना बहुत होता है। कुछ जातियां आपने ऐसी भी बताई थीं जो जादूगर से पूछे बिना अपने बच्चों को स्कूल तक नहीं भेजतीं। लेकिन आपने ऐसे जादूगरों के बारे में विस्तार से कभी नहीं बताया जो असाध्य रोगों की चिकित्सा भी कर सकें। अगर ऐसा कोई समाज हो, तो वहां बहुत-से बिगड़े हुए रोगी भेजे जा सकते हैं।''

इसी बीच समता और लोकराज भी पहुंच गए।

मैंने कहा—

''अच्छा बच्चो, आज हम एक ऐसी आदिम जाति के बारे में चर्चा करेंगे जो जादू-टोने के जोर से कठिन कामों को सरल बना लेती है और असाध्य रोगों को ठीक कर देती है। मध्य प्रदेश की गोंड जनजाति के बारे में तुम्हें काफी कुछ बतला चुके हैं। उसी के साथ बैगा लोग भी रहते हैं। लेकिन गोंड जहां क्षत्रिय जनजाति है, वहां बैगा एक उच्च कोटि की जादूगर जाति है। यहां तक कि इनके बच्चे भी छोटे-मोटे जादू आसानी से सीख लेते हैं।''

''ये काम क्या करते हैं, पापा!'' ऋचा बोली।

''तुमने 'झूम की खेती' शब्द सुना होगा। बैगा इसी प्रकार की खेती करते हैं। झूम की खेती कैसे की जाती है, बतलाता हूं। कुल्हाड़ी से घने जंगलों को काटकर गिरा दिया जाता है। छोटे पौधे और वनस्पतियां भी नष्ट कर दी जाती हैं। जब पत्ते और तने सूख जाते हैं तो उनमें आग लगा दी जाती है। जो राख पृथ्वी पर जम जाती है उसी में बीज बो दिया जाता है। उनका विश्वास है कि हल चलाने से पाप चढ़ता है। हल में नुकीली फाली लगी होती है जिससे धरती माता की छाती चिरने का भय रहता है। इसलिए हल का प्रयोग अब भी कम ही होता है। बैगा लोग एक स्थान पर तीन वर्ष से ज्यादा नहीं रहते क्योंकि इसके बाद जमीन की राख प्रायः रुक नहीं पाती। वर्षा का पानी राख को बहा ले जाता है तो पैदावार कम होने लगती है। वैसे आजकल अनेक परिवार हल चलाने लगे हैं।''

''इनका भोजन तथा रहन-सहन कैसा होता है? इनकी जादूगरी का कमाल सुनकर हमें तो डर-सा लगता है। क्या ये सचमुच ही बड़े जादूगर होते हैं?''

समता कुछ भयभीत-सी खड़ी थी।

मैंने उसके प्रश्न का उत्तर देना शुरू किया—

''बच्चो, जादू शब्द से तुम्हें घबराना नहीं चाहिए। वास्तव में जिस बात का अर्थ तुम्हें समझ में न

आए, वही जादू है। वैसे आदिमानव को प्रकृति से लगातार संघर्ष करना पड़ा जिससे वह भयभीत होकर या तो उसकी पूजा करने लगा अथवा उस पर विजय पाने के लिए मंत्र पढ़ने लगा। कुछ नृविज्ञानियों तथा विद्वानों का ऐसा विचार है। तुम बड़े होकर पढ़ोगे कि दुनिया में पहले धर्म आया या जादू?

''इनका प्रिय भोजन मांस और जंगली कंद-मूल है। ये लोग मिट्टी के बर्तनों में खाना पकाते हैं और पत्तों पर परसकर खाते हैं।

''इनका रंग प्रायः सांवला होता है। स्त्री-पुरुष दोनों ही जांघों से ऊपर तक धोती लपेटते हैं। इनके घर स्थायी नहीं होते क्योंकि हर तीन साल के बाद जब जमीन खेती के योग्य नहीं रहती तो उसे छोड़कर चल देते हैं। आजकल कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं और सरकार ने भी इनके स्थायी निवास के लिए साधन जुटाए हैं, लेकिन फिर भी ये लोग अपनी पुरानी आदत से लाचार हैं। मैदानी भाग के बैगा अधिकतर मजदूरी करके अपना पेट पालन करते हैं।''

''इनके बच्चे क्या करते हैं?'' ऋचा ने प्रश्न किया।

''इनके बच्चे भी इन्हीं की तरह घुमंतू जिन्दगी बिताते हैं। बेचारों को पेट भर रोटी अच्छी तरह से नहीं मिल पाती, फिर इनकी शिक्षा का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इनके मां-बाप जब तेंदू के पेड़ के पत्तों को तोड़ते हैं, बच्चे उनके काम में पूरी तरह सहायता करते हैं। इस वृक्ष के पत्ते को बीड़ी के ऊपर लपेटा जाता है। इतने सस्ते मजदूर बैगा बच्चों और उनके मां-बाप को छोड़कर और कहां मिलेंगे! जंगलों में छोटी-छोटी झोपड़ियों में पलने वाले ये बालक कितनी मुसीबतों से गुजरते हैं, तुम लोग इसका अंदाजा तक नहीं लगा सकते।

''ये लोग सुअर भी पालते हैं। गोंड लोगों की तरह इन्हें सुअर का मांस बड़ा अच्छा लगता है।

''ये लोग तीर-कमान चलाने में बड़े निपुण होते हैं। वैरियर इलविन ने इस समाज की बहादुरी की भी बड़ी प्रशंसा की है। उनका कहना है कि विश्वयुद्ध में कुछ बैगाओं का समूह उनसे मिलने आया और सैकड़ों धनुष-बाण उन्हें देकर कहने लगा कि उनके धनुष-बाणों को भारत (ब्रिटिश) सरकार को भेज दिया जाए ताकि दुश्मन का मुकाबला अच्छी तरह से किया जा सके, लेकिन जब मैंने इनसे कहा कि आजकल की लड़ाइयों में ये शस्त्र बेकार होते हैं, अब तो बंदूकों और तोपों का जमाना है, इसलिए इन पुराने शस्त्रों से कुछ नहीं हो पाएगा तो इस पर बैगा जादूगरों ने 'थुआ' जादू करके दुश्मन को हराने का फैसला किया। एक बैगा ने हिटलर के नाम पर कांटेदार झाड़ी उठाई और उसे उसकी कब्र बनाकर मिट्टी में दबा दिया। दूसरे बैगा एक बहुत बड़ा पत्थर उठाकर लाए और हिटलर की कब्र पर रख दिया इसके बाद घोषणा की कि इस पत्थर के रखने से अब हिटलर लड़ाई में जरूर हार जाएगा और फिर कभी सर नहीं उठाएगा।''

मैं कुछ और कहने वाला था कि समता ने बात काटते हुए पूछा—

''अजीब कहानी है यह तो! क्या आदिवासियों को भी हिटलर और विश्वयुद्ध के बारे में पता चल गया था। अच्छा, अब समझी, जरूर वे लोग जादू के जोर से यह सब पता लगा लेते होंगे।''

''समता बेटी, इसमें तो कोई शक नहीं कि ये लोग अपना जादू दिखाकर तुम्हें अचम्भे में डाल सकते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं लगाना चाहिए कि यह सौ प्रतिशत सही होता है। वास्तव में विज्ञान इसे सिद्ध नहीं करता और न ही पढ़े-लिखे व्यक्तियों के दिमाग में यह चीज सही उतर सकती है। हां, विश्वास सबसे बड़ा होता है। इसलिए कई बार गलत बातों को भी सही मान लिया जाता है। रही बात हिटलर और विश्वयुद्ध के बारे में इन लोगों की जानकारी की, वास्तव में अंग्रेज पादरियों द्वारा इन्हें सूचनाएं मिलती रहती थी।

''तुमने अभी तक कई दूसरी बातें नहीं पूछीं। जानते हो, ये लोग नृत्य में बड़े कुशल होते हैं। स्त्रियां तथा पुरुष आमने-सामने हाथ में हाथ डालकर नाचते हैं। जब ढोल की डिमडिम शुरू होती है तो इनके पांव थिरकने लगते हैं और उसकी आवाज बढ़ने के साथ-साथ इनके पांवों की चाल बढ़ती जाती है। ये इतना



नाचते हैं कि खुद को भी भूल जाते हैं। स्त्रियां पैरों में घुंघरू बांधकर झुनझुन करती हुई नाचती हैं। इनके लोक गीत भी बड़े मार्मिक होते हैं।

''बैगा वर्षा और धूप से बचने के लिए बांस की छतरी बनाते हैं। तुम्हारी छतरी के अंदर तो कई बार तेज वर्षा की बूंदें आ जाती होंगी किन्तु इनकी छतरी इतनी बढ़िया बनी होती है कि पानी तो पानी, अगर ओला भी पड़े तो भी उसमें सुरक्षित रहा जा सकता है। इस छतरी को 'खोमारी' कहते हैं।

''बैगाओं का धर्म हिन्दू धर्म से काफी मिलता-जुलता है। इनके देवी-देवताओं में 'खेरवा' का अपना स्थान है। रामनवमी का त्यौहार ये लोग बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। बड़ा जुलूस निकाला जाता है जिसमें सभी स्त्री-पुरुष शामिल होते हैं। बच्चों को तो बड़ा मजा आता है। सभी हंसी-खुशी से मिलते हैं और उस विचित्र तमाशे को देखने के लिए मचलते रहते हैं। सचमुच इन बच्चों की जिन्दगी में त्यौहार ही मनोरंजन का साधन है। कुछ स्त्रियां मिट्टी के बर्तनों में आठ-दस दिन पहले बोए हुए गेहूं और जौ के पौधों को लेकर चलती हैं। उनके पीछे भक्त लोगों की लम्बी कतार होती है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि ये आदिवासी भक्त नियत स्थान पर जाते ही बेहोश हो जाते हैं। इसके बाद एक विचित्र दृश्य देखने में आता है। लोहे की कुछ जंजीरें आग में तपाई जाती हैं। देवी का भक्त आता है और उन जंजीरों को हाथ में उठा लेता है। सब बच्चे आश्चर्य से देखने लगते हैं क्योंकि भक्त का हाथ बिल्कुल नहीं जलता और वह उन्हें पकड़कर दुहने की क्रिया करता रहता है। बैगा कहते हैं, यह मंत्रों का प्रभाव है।

''अच्छा बच्चो, इनका बाकी जादू इनके यहां जाकर स्वयं देखना।''

5. बच्चों का घर

एक कहावत मुड़िया आदिवासियों के मुख से सुनी जाती है।

''हम अपने घोटुल-घरों के नियमों को सरकारी कानून से भी ज्यादा मानते हैं। हमने क्योंकि स्वयं घोटुल के कानून बनाए हैं इसलिए हमें उससे विशेष प्यार है।''

वास्तव में जिस समाज के जीवन में प्यार नाम की कोई वस्तु नहीं हो तो वह जीवित होते हुए भी मुर्दे जैसा है। आज का नगरीय जीवन मशीन की तरह बनता जा रहा है। उसमें परस्पर सहयोग की मात्रा दिन-प्रति-दिन घटती जा रही है। लेकिन अनेक जनजातियों में सहयोग, सद्भावना, ईमानदारी और प्यार के चिन्ह अभी तक शेष हैं। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि अमरीका की जूनी जनजाति में आज तक कोई आपसी झगड़े नहीं हुए। उनमें प्रतियोगिता नाम की भी कोई वस्तु नहीं है। सभी स्त्री-पुरुष, बालक और वृद्ध टीम की भावना से काम करते हैं।

ऋचा बोली—''पापा, आप तो मुड़िया आदिम जाति के बारे में कुछ कह रहे थे, फिर अमरीका की जनजाति पर क्यों बोलने लगे!''

समता ने भी हां-में-हां मिलाई—''हां हां, अंकल, पहले तो आप हमें अपने ही देश की जनजातियों के बारे में बताइए।''

मैंने कहा—

''यह तो ठीक है कि तुम पहले अपने देश की जनजातियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करो, लेकिन यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि सारे संसार की जनजातियों में कई बातें इतनी समान हैं जिनकी चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। अच्छा, पहले उनके निवास स्थान और रीति-रिवाजों के बारे में बतलाते हैं।

''तुमने बस्तर के महाराजा भंजदेव का नाम सुना होगा। मुड़िया जनजाति उन्हीं के क्षेत्र में वास करती है। बस्तर मध्य प्रदेश का एक जिला है। मुड़िया शब्द का अर्थ है 'आदिवासी'। वैसे 'मुर' शब्द का अर्थ ढाक होता है। शायद ढाक के जंगल में रहने के कारण यह जनजाति मुड़िया कहलाने लगी। पहाड़ी मुड़ियाओं के निवास स्थायी होते हैं। ये लोग अच्छे किसान होते हैं। ये शहद इकट्ठा करते हैं और पशुपालन भी करते हैं। ये लोग अच्छे शिकारी भी होते हैं।

''इनका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखमय होता है। मुड़िया पिता को अपने बच्चों पर बड़ा गर्व होता है। वे उनके प्रति सहनशील होते हैं और उन्हें जिन्दगी के हर पक्ष को सिखाने के इच्छुक रहते हैं। छोटी-छोटी लड़कियां अपनी मां के साथ घर में गोबर लीपती हैं। वे छोटे-मोटे काम-काज स्वयं कर लेती हैं। लड़के कुल्हाड़ी लेकर अपने पिता के साथ जंगल से पत्ती काटने जाते हैं तो लड़कियां अपनी मां के साथ कुएं से पानी भरकर लाती हैं।

''पिता अपने बच्चों को नाच सीखने के लिए जोर देता है। उन्हें बड़ा होने पर 'घोटुल-घर' में भेज दिया जाता है। यहां उन्हें सुखी जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी जाती है। सभी लड़के-लड़कियां साथ-साथ



मिलकर खेत में काम करते हैं, जंगल जाते हैं तथा सार्वजनिक कामों में हाथ बटाते हैं। घोटुल जैसे घर भारत की मुंडा, हो, ओरांव और छोटा नागपुर की कुछ जनजातियों में देखने को मिलते हैं। लेकिन मुड़िया जाति का घोटुल न केवल भारत की बल्कि दुनिया भर की ऐसी संस्थाओं में सबसे ज्यादा मजबूत है। इसके नियमों को तोड़ना बहुत बुरा माना जाता है। पर अब इनका प्रभाव भी समाप्त होता जा रहा है।''

''पर क्या इनमें गुड्डे-गुड़ियों का ब्याह भी कराया जाता है? समता बोली।

''बेटी, इनमें तुम्हारे जैसे गुड्डे-गुड्डियों का ब्याह नहीं कराया जाता'' बल्कि लड़के-लड़कियों को मन-पसंद विवाह करने की शिक्षा दी जाती है। मुझे इस सम्बंध में एक घटना याद आ रही है, सुनो—

''असादू स्कूल में पढ़ने जाता था। वहां उसे दुनिया के बारे में नई-नई बातें पढ़ने को मिलती थीं। वह घोटुल-प्रथा का विरोध करने लगा। शुरू में तो किसी ने कुछ नहीं कहा, लेकिन जब उसके विवाह के दिन पास आने लगे तो उसके संगी-साथी उससे कतराने लगे। यहां तक कि कोई विवाह में जाने को भी तैयार न था।

''असादू बोला—मुझसे क्या गलती हुई है भाई, जो मेरे साथ अब बात तक नहीं करते?

''जैनू ने उत्तर दिया—तुमने हमारे साथ कभी घोटुल के काम में हिस्सा लिया? न तुम हमारे नाच में शामिल हुए और न गीतों में। इसलिए जाओ, अब हम तुम्हारे विवाह में शामिल नहीं होंगे। अकेले ही जाकर शादी कर लो।

''असादू की आंखों में आंसू छलक आए। उसे अपनी गांधी टोपी उतारकर पगड़ी पहननी पड़ी, मुड़िया आभूषण पहनने पड़े और घोटुल में जाकर काम करना पड़ा। तब कहीं जाकर उस बेचारे को बहू मिली।''

लोकराज बोला—''क्या ये लोग भी शिवजी की पूजा करते हैं?''

मैंने कहा—"शिवजी हिमालय की जनजातियों में जिस तरह से पूजे जाते हैं वैसे दूसरी जगह नहीं। इनके अपने देवता होते हैं। ये महुवे का पेय देवताओं पर चढ़ाते हैं। यह एक अच्छी बात है कि शराब, गांजा या भांग का सेवन ये अच्छा नहीं समझते। आश्चर्य की ही बात है कि इस जनजाति में ये चीजें अच्छी नहीं समझी जातीं।

"मुड़िया महिलाएं और पुरुष आभूषण-प्रिय होते हैं। स्त्रियां कान, गले और हाथों को गहनों से भरे रहती हैं तो पुरुष भी पीछे नहीं रहते। वे कान, गले तथा हाथों में अनेक प्रकार के आभूषण पहने रहते हैं। शरीर की सजावट का जितना ध्यान इस जनजाति के लड़के-लड़कियां रखते हैं उतना शायद ही कोई दूसरी जनजाति रखती हो।



"नृत्य और संगीत की शिक्षा इस जनजाति के बच्चों को प्रारंभ से ही दी जाती है। शरीर को विभिन्न पदार्थों से पोतकर नृत्य के लिए तैयार होना पड़ता है। 'सींग-नृत्य' में सर पर पशुओं के बड़े-बड़े सींगों को पहना जाता है। ढोल और नगाड़े बजाए जाते हैं। लोग झूम-झूमकर नाचते हैं। बच्चे उनकी देखा-देखी पैरों को मिला-मिलाकर रखते हैं और धीरे-धीरे अच्छे नर्तक बन जाते हैं।"

"मुड़िया वस्त्र कम पहनते हैं। उनका शरीर आभूषणों से ही इतना लद जाता है कि अधिक वस्त्र उन्हें अच्छे नहीं लगते। उनके जीवन में यदि कुछ है तो वह है उल्लास और आनंद या प्यार-ही-प्यार।

"आओ, इस समाज से प्यार का पाठ सीखें।"

6. शाकाहारी समाज

''नागा जनजाति कभी नरभक्षी थी। कुछ जनजातियां कच्चा मांस खाती हैं, तो कुछ सांप, चूहे और मेंढक तक खा जाती हैं। लेकिन ऐसे आदिवासी समाज में कम नहीं जो कंदमूल फल खाकर पूरा जीवन बिता देते हैं। आज हम एक ऐसे समाज के बालकों की चर्चा करेंगे जो दूध और घी को छोड़कर कुछ और पसंद नही करते। वे मक्खन के साथ रोटी खाएंगे और मांस का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ेंगे। जंगली कंदमूल और शाक-भाजी इनका प्रिय भोजन है। दक्षिण भारत की जनजातियों में यह अपने ढंग का निराला आदिम समाज है। जानते हो, इनका नाम क्या है?''

लोकराज बीच में ही बोल उठा—

''झूठ, बिल्कुल झूठ ! अंकल जी, आपको आज जरूर किसी ने भंग पिला दी है। भला ऐसा भी कहीं हो सकता है ! आपने अब तक जितनी जनजातियों के किस्से सुनाए, उनमें से कोई भी ऐसा समाज नहीं था, जो शुद्ध शाकाहारी हो। प्रायः सभी कबीले मांस खाते हैं। आप किस वैष्णव समाज की बात कर रहे हैं? कहीं गलती से आप उत्तर प्रदेश के गौड़ ब्राह्मणों या जैनियों की बात तो नहीं कर रहे?''

मैंने बच्चों की शंका दूर करते हुए कहा—''आदिम जातियों के बारे में बच्चों में ही नहीं बल्कि बड़े लोगों में भी काफी भ्रांतियां फैली हुई हैं। बहुत-से लोग समझते हैं कि आदिम जातियां सिर्फ शिकार पर जीवित रहती हैं, जानवरों की तरह खूंख्वार होती हैं और वन-मानुषों की तरह नंगी रहती हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। सभी जनजातियां एक जैसी नहीं होतीं। आज ब्राह्मण तथा अन्य समाजों में भी मांसाहारी मिल जाएंगे। किन्तु आदिम जातियों में एक शाकाहारी समाज है—टोडा। इनके बच्चे तो वास्तव में ही पूरे वैष्णव होते हैं जो कभी अंडा तक नहीं छूते।''

''ये कहां रहते हैं, जल्दी से बताइए न?'' ऋचा बोली।

''तुमने नीलगिरि पर्वत का नाम सुना होगा। वहां सुंदर और अच्छे चरागाह हैं। इन्हीं हरी-भरी पहाड़ियों पर इन लोगों के छोटे-छोटे गांव हैं। तमिलनाडु के उटकमंड जिले में ये लोग रहते हैं। पर इनकी संख्या बढ़ने के बजाय घटती रही है। ये लोग अधिकतर भैंस पालते हैं। उसके दूध से मक्खन बनाते हैं। तुम अगर इनके गांव कभी पहुंच सको तो तुम्हें ताजा मक्खन पेट भरकर खाने को मिलेगा और दूध जितना चाहो उतना पीना। इनके गांव को 'मुंडे' कहते हैं। इन गांवों में केवल चार-पांच घर ही होते हैं। जिस टोडा के घर में जितनी अधिक भैंसें होती हैं, वह उतना ही धनी समझा जाता है। हिमाचल प्रदेश के गद्दी व गुज्जरों की तरह ये लोग भी अपने पशुओं को लेकर पहाड़ियों पर घूमते रहते हैं।''

मैं कुछ और कहने जा रहा था कि समता बीच में ही बोल पड़ी —

''आज आपने तीन कबीलों — नागा, गद्दी और गुज्जर — के नाम और जोड़ दिए। पर इनके बारे में तो हम कुछ भी नहीं जानते?''

''इनकी चर्चा हम आगे करेंगे। अभी टोडाओं के बारे में सुनो। जलवायु रहन-सहन और पेशों पर बड़ा प्रभाव डालती है। नीलगिरि के इलाके की हालत ठीक इसके विपरीत है। ये लोग अन्य घुमंतू लोगों की

तरह अधिक समय प्रवास में नहीं रहते। हां, चरागाहों में जरूर घूमते हैं। अब लोग खेती भी करते हैं। ये लोग अपनी रक्षा के लिए धनुष-बाण और दूसरे हथियार भी रखते हैं।''

''इनके बारे में कुछ और बातें विस्तार से बतलाइए।'' लोकराज ने सवाल किया।

''देखो बच्चो, टोडा दक्षिण भारत की सुंदर जनजाति है। इनका कद औसत दर्जे का होता है। शरीर गठीला, रंग साफ तथा नाक-नक्श मोहक होते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है इनके बाल। स्त्री-पुरुष, बच्चे और बूढ़े सभी लम्बे और घने बाल रखते हैं। स्त्रियां तो बहुत बड़ी-बड़ी जटाएं रखती हैं। वे घी लगा-कर उन्हें चिकना बनाए रखती हैं। बालों को रखने का शौक इस जनजाति में बहुत पुराना है। पुरुष दाढ़ी-मूछें प्रायः नहीं बनवाते। टोडा देखने में बिल्कुल रोमनों जैसे लगते हैं। शरीर की सफाई की तरफ भी



इन लोगों का ध्यान रहता है। लम्बे-लम्बे कपड़ों को ये चादर की तरह शरीर पर लपेट लेते हैं। उन पर बेल-बूटे भी निकालकर पहनने का रिवाज है। स्त्रियों और पुरुषों का पहनावा मिलता-जुलता लगता है। अपने शरीर पर चित्र गुदवाने का स्त्रियों को शौक है। ये चांदी और पीतल के आभूषण पहनती हैं। अब बहुत-से परिवारों की स्त्रियां सोने के गहने भी पहनती हैं।

''तुम्हें 'टोडा' शब्द का अर्थ भी बतलाता हूं। 'टोडा' 'कोडा' शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है जिसका अर्थ होता है पहाड़। तमिल भाषा बोलने वाले इन्हें 'टूडावान' कहते हैं। 'टूड' एक पेड़ का भी नाम होता है जो उस इलाके में पैदा होता है। इस पेड़ को ये लोग देवता की तरह ही पवित्र मानते हैं।

''एक और आश्चर्य की बात सुनकर तुम जरूर हंस पड़ोगे। अच्छा जरा बताओ तो समता बेटी, तुम्हारे कितने पापा हैं?''

''हैं-हैं, यह क्या कहते हैं अंकलजी! भला पापा भी कहीं दो-दो हुआ करते हैं। मैंने तो कभी नहीं सुना! ऋचा, तू बता, तेरे कितने पापा हैं!'' समता आश्चर्य के साथ हंसती हुई बोली।

''छिः छिः कैसा सवाल करती है? तेरे होंगे दो-दो पापा। मेरे तो एक ही हैं। है न पापा जी।'' ऋचा ने मुंह बनाकर जवाब दिया।

और तब तीनों बच्चे खिलखिलाकर हंसने लगे।

मैंने उनकी शंका को ध्यान से सुना और बोला—

''बच्चो, किसी के रीति-रिवाजों को सुनकर या देखकर उनकी खिल्ली नहीं उड़ाते। जिज्ञासा के साथ उन्हें समझने का प्रयत्न करते हैं। हो सकता है, यह बात सुनने में विचित्र लगती हो, लेकिन वहां के वातावरण के अनुकूल हो। अच्छा तो बताओ, तुममें से कौन-सा बच्चा उनकी इस विचित्र प्रथा को स्वयं अपनी आंखों से देखना चाहेगा।''

तीनों बच्चों ने एक साथ 'मैं' कहकर उत्तर दिया।

और मैं फिर आगे बढ़ता गया।

''समता बेटी, तुम अगर किसी टोडा लड़की से मिलोगी तो वह तुम्हारे दूसरे पापाओं के बारे में जरूर कुछ पूछेगी, क्योंकि उसके एक से ज्यादा पापा होते हैं। जैसे तुम अपने पापा के भाइयों को चाचा और ताऊ कहती हो, वैसे ही ये लड़कियां उन्हें पापा कहकर पुकारती हैं। इसलिए उनके पांच या छह या उससे भी ज्यादा पापा हो सकते हैं। यह यहां की प्रथा है। इस प्रथा के बारे में शेष बातें तुम लोग बड़े होकर पढ़ोगे। लेकिन ध्यान रखना, किसी टोडा बालिका को यह महसूस न होने देना कि उनका यह रिवाज अच्छा नहीं है। और हां, कभी देहरादून का जौनसार बावर वाला क्षेत्र भी देख आना। वहां भी ऐसी ही प्रथा देख सकोगी।''

''इनके बच्चों की शिक्षा के बारे में भी कुछ बताइए न!'' अनिल ने पूछा।

''तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि इस जाति में पहले कभी लड़कियों को पैदा होते ही मार दिया जाता



था। यहां परिवार में एक से ज्यादा कन्या का होना पाप समझा जाता था। अब तुम अनुमान लगा सकते हो कि जिस समाज में नवजात शिशुओं की ऐसी दशा रही हो, वहां शिक्षा की चिन्ता कौन करेगा? इनके बच्चे तो बचपन से ही भैंसें चराने और जंगली कंदमूल इकट्ठा करने के काम में पड़ जाते हैं इसलिए पढ़ाई का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हां, आजकल कुछ एक परिवारों में पढ़ाई का महत्व समझा जाने लगा है। लेकिन यह न के बराबर है। हमने जिक्र किया था कि इन लोगों की जनसंख्या घटती रही है। अब किसी बालिका को यहां पैदा होते ही मारा नहीं जाता।

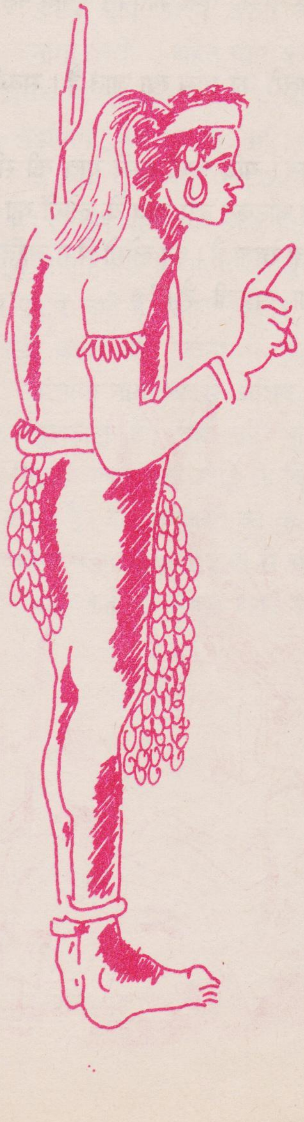
''हां, तुमने इनके धर्म के बारे में कुछ नहीं पूछा।

''टोडा बच्चों के मां-बाप सूर्य और चंद्रमा की पूजा करते हैं। इनके देवता 'कडूवल' कहे जाते हैं। इनके पुजारी भी होते हैं जिन्हें 'पलाल' नाम से पुकारा जाता है। पलाल जीवन-भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है और सादा जीवन बिताता है।''

''टोडा बच्चे जंगल के खुले वातावरण में सांस लेते हैं। प्रकृति की गोद में पलते हैं और खाने-पीने के मामले में सचमुच गांधीजी के चेले हैं। पर कितनों ने गांधीजी का नाम सुना होगा!''

7. भाले से शिकार

तालकटोरा गार्डन में ऋचा, समता और लोकराज—तीनों मेरे साथ घूम रहे थे। यहां प्रतिवर्ष 26 जनवरी के अवसर पर अलग-अलग आदिम जातियों के मुखिया तथा लोक-नर्तक इकट्ठे होते हैं। गणतंत्र-दिवस के अवसर पर दिल्ली में आदिवासियों के लोक-नृत्यों से नई रौनक-सी आ जाती है। रंग-बिरंगी वेशभूषा पहनकर जब आदिवासियों के झुंड बाहर निकलते हैं तो लगता है, सारा भारत दिल्ली में ही आकर बस गया है। हम सब अलग-अलग वस्त्र पहनते हैं, अपनी-अपनी भाषाएं बोलते हैं, भिन्न-भिन्न धर्मों में विश्वास रखते हैं किन्तु फिर भी एक हैं। आखिर क्यों?



"क्योंकि भारत हम सभी का प्यारा देश है और हम इसके प्यारे बच्चे हैं। बोलो बच्चो, ठीक है न? बिल्कुल ठीक—बिल्कुल ठीक।" तीनों बच्चों ने एक साथ उत्तर दिया।

इसी बीच हाथ में भाला लिये, सर पर घोड़े जैसी पूंछ बांधे तथा कौड़ियों का लंगोट लटकाए एक नागा गुजरा।

समता बोली—"अंकल, अंकल, यह आदमी है या लाल बंदर! मुझे तो इसे देखकर डर-सा लगता है। यह भाला लेकर किसे मारने जा रहा है?"

ऋचा और लोकराज भी मुझे चिपटने लगे। दोनों भयभीत नजर आते थे। मैंने नागा आदिवासी को अपनी ओर आने का संकेत किया और बच्चों के हाथ में उसका भाला देकर उनका भय दूर किया। नागा बच्चों को देखकर मुस्कराने लगा।

"पापा, आप जब नागालैंड से वापिस आए थे तो कहते थे कि नागा लोग बड़े खूंख्वार होते हैं कभी आदमी तक को खा जाते थे। लेकिन यह नागा देखने में तो बिल्कुल भयंकर दिखाई पड़ा, पर इसने हमें तो कुछ भी नहीं कहा। रामलीला में जैसे हनुमानजी का पहनावा होता है, वैसा ही इस नागा का भी था। कहीं सचमुच यह हनुमान ही तो नहीं था?" ऋचा ने प्रश्न किया।

लोकराज और समता भी बोल पड़ी—"हां-हां, सचमुच यह हनुमान ही तो था।" मैंने बच्चों की कल्पना की सराहना की और बोला—"तुम्हारी कल्पना के ये हनुमान सचमुच हनुमान जी की तरह ही बड़े बलवान होते हैं। इनका शरीर गठीला, स्वस्थ तथा शक्तिशाली होता है। भाला इनका रक्षक है। इसे ये कभी अपने से अलग नहीं करते। वास्तव में जंगलों में पशुओं से

अपनी रक्षा करने के लिए नागा जाति ने भाले को अपने जीवन का अंग बना लिया है। ये लोग कभी पहले आदमी को भी मारकर खा जाया करते थे किन्तु आजकल ऐसी कोई घटना सुनने में नहीं आती।''

''ये लोग कहां रहते हैं और इनके रीति-रिवाज कैसे हैं? कुछ विस्तार से बताइए।'' लोकराज ने प्रश्न किया।

''नागालैंड का नाम तुमने भूगोल में पढ़ा होगा। यह प्रदेश भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा पर स्थित है। नागा, आसाम और नेफा में भी काफी संख्या में पाए जाते हैं। इनकी कई उपजातियां हैं जैसे—अंगामी, सेगा, मारिंग, माओ, आओ, कुबई, लहोरा और तांगखुल आदि। इन सबकी भाषा और रीति-रिवाज भी कुछ-कुछ अलग हैं। 'नागा' शब्द संस्कृत के 'नग' शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है 'पहाड़'। एक विद्वान इसे 'नाग' अर्थात् सांप का पर्यायवाची कहते थे। वास्तव में यह धारणा सही नहीं है।

''नागा पुरुष शिकार में मस्त रहता है। उसकी पत्नी खेत में काम करती है, जंगल से लकड़ी लाती है, धान कूटती है. पानी भरती है, और-तो-और बेचारी को परिवार के लिए कपड़ा तक कातकर बुनना पड़ता है। उसका काम पुरुष की अपेक्षा अधिक मेहनत का होता है।

''नागा लोग मांस खाते हैं। बिल्ली को छोड़कर शेष सब जानवरों का मांस खा जाते हैं। सब्जी कम किन्तु चावल और मछली ये खूब चाव से खाते हैं।

'नागा अपने गांव की सीमा के बाहर कभी शिकार नहीं खेलते। यदि कभी दूसरे गांव की सीमा में गलती से पहुँचकर कोई शिकार कर भी लेते हैं तो उसका आधा भाग बांटकर उस गांव के लोगों को दे देते हैं। हां, एक कबीला यदि दूसरे से भिड़ गया तो पीढ़ियों तक बदला लेता रहता है। इन लोगों में न जातिवाद है और न ही वर्गवाद का भूत। इनके जीवन में समता देखी जा सकती है।''



समता बात काटकर बोली—''लेकिन मैं तो यहां हूं। उनके बीच कैसे चली गई?''

मैंने कहा—''बेटे, तुम नाम की समता हो। आगे चल कर पता चलेगा अपने नाम के अर्थ का कितना पालन करती हो!''

ऋचा ने बात काटते हुए कहा—

''पापा, वहां के बच्चों के बारे में बतलाना तो आप भूल ही गए। क्या वे भी उन्हीं की तरह कभी बच्चों को मारकर खा जाया करते थे।''

''बेटे, मुझे इस बात का पता तो नहीं कि किसी बच्चे ने दूसरे बच्चे को मारकर खाया था, हां इतना जरूर सुना है कि ये बच्चे अपने माता-पिता द्वारा मारे हुए आदमी का मांस उनके साथ मिलकर अवश्य खाया करते थे। लेकिन अब ऐसा कुछ नहीं है। अब किसी आदमी को मारकर उसे खाने की बात कोई नहीं सोचता। अब ये बच्चे स्कूल जाते हैं, पढ़ते-लिखते हैं। बहुत-से नागा अच्छे पदों पर काम कर रहे हैं। इन लोगों में परिवर्तन आया है। लेकिन दूर-दराज के नागा अभी भी अंधविश्वासों से दूर नहीं हो सके।''

''उनके बाप अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं?'' लोकराज ने सवाल किया।

''नागा बच्चों से बहुत प्यार करते हैं। जिस घर में बच्चा नहीं होता, वे उसे अशुभ मानते हैं। पुत्र का जन्म अच्छा समझा जाता है। वे बड़े होकर बाप के साथ शिकार करने में हाथ बटाते हैं। जब तक लड़के-लड़कियों का विवाह नहीं होता, वे अपने माता-पिता के साथ खेतों में काम करते हैं।

''ये लोग मृतक की पूजा करते हैं। उनका विश्वास है कि 'अवालुंगु' पत्थर से कोई भी इच्छा पूरी हो सकती है। लेकिन यह पत्थर आज किसी को दिखाई नहीं पड़ता। इनके देवी-देवताओं में 'सेमियों' का स्थान महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह देवता धन का अधिकारी होता है। अन्य देवता 'रुपिआव' तथा 'कनंगआवा' के नाम से पुकारे जाते हैं। आजकल शिक्षा बढ़ने के साथ इनके विश्वास भी बदले हैं। आज नागा बच्चे अन्य आदिवासी बच्चों की तुलना में पीछे नहीं है। इनके लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है।

''अंगामी नागा सबसे अधिक सुंदर क्षेत्र में निवास करते हैं। जलवायु तथा भौगोलिक दृष्टि से ये अधिक खुशहाल हैं। यहां की भूमि अच्छी है जिसमें चावल की पैदावार होती है।

''लोक नृत्यों और गीतों के बिना यहां का जीवन अधूरा है। इनके नृत्य अपने ही ढंग के होते हैं। निराले लगते हैं। इस जनजाति को कठोर जीवन बिताना पड़ा है। उसे न केवल प्राकृतिक कठिनाइयों का ही सामना करना पड़ा बल्कि शत्रुओं से भी मोर्चा लेना पड़ा है। वास्तव में यह बहादुर जाति अपने सुंदर भविष्य के लिए बड़ी तेजी से कदम बढ़ा रही है। आज नागा जाति के लोग प्रगतिशील कहलाने लगे हैं।''

8. लोमड़ी का मानव-बालक

(एक सच्ची कहानी)

''मां ले आवे के?''—क्या आप मेरी मां को ले आए हैं? लोमड़ी-बालक के इस वाक्य को दो बार सुना-अनसुना कर दिया था किन्तु आज वह नहीं मानेगा। वह मृग-शावक की तरह चौकड़ी भर मेरे पांवों में लिपट गया। मैं हतप्रभ-सा उसकी ओर निहारता रहा।

''मां को है वाय?''— मां किसे कहते हैं? आदिवासी बोली में उसने दूसरा प्रश्न किया। इसी बीच आश्रम के सभी बच्चे मेरे इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए थे।

मैंने कहा—''कल बताऊंगा।''

''लेकिन कल भी तो ऐसे ही कहा था'' वह बोला। ''तू नहीं बताता—मां किसे कहते हैं। तू नहीं बताता मेरी मां कहां है ! वह हठी बन गया था। उत्तर न मिलने पर वह नाराज हो गया। मैं इंदौर जाने की तैयारी में था, अतः इस प्रश्न का उत्तर अन्य अवसर के लिए टाल देना चाहता था। किन्तु आज वह नहीं माना।

मैंने अपनी पत्नी और बच्चों को बुलाया तथा आश्रम के अन्य सभी आदिवासी बालकों को भी प्रागंण में आने के लिए कहा। आश्रम में सन्नाटा छाया हुआ था। सभी बालक मेरी ओर प्रश्नसूचक मुद्रा में देख रहे थे। मैंने लोमड़ी-बालक को अपने पास बुलाया और प्यार-भरी थपथपी दी।

''तुम्हारी यह क्या लगती है?'' मैंने अपने बड़े लड़के से अपनी पत्नी की ओर इशारा करते हुए पूछा।

''बा लगती है।'' उसने हंसते हुए उत्तर दिया।

''तुम्हारी यह क्या लगती है?'' मैंने अपने दूसरे लड़के से प्रश्न किया और फिर आश्रम के अन्य बालकों से भी यही प्रश्न किया। सभी ने कहा कि वह हमारी 'बा' लगती है। लोमड़ी-बालक की बारी आई तो वह भी इसी लहजे में बोला कि वह सबकी 'बा' लगती है। वास्तव में मेरी पत्नी को सभी बच्चे 'बा' कहकर पुकारते हैं।

''लेकिन यह तुम्हारी मां लागै। अर्थात् यह तुम्हारी मां लगती है। 'बा' दूसरों की है, तुम्हारी तो 'मां' है।'' विश्वास-भरे शब्दों में मैंने यह वाक्य दोहराया।

लोमड़ी-बालक को अपनी मां मिल गई। वह उससे चिपट गया और उसका मुंह तथा हाथ चाटने लगा। मेरी पत्नी भी उसे उसी प्रकार वात्सल्य भाव से प्यार करती रही।

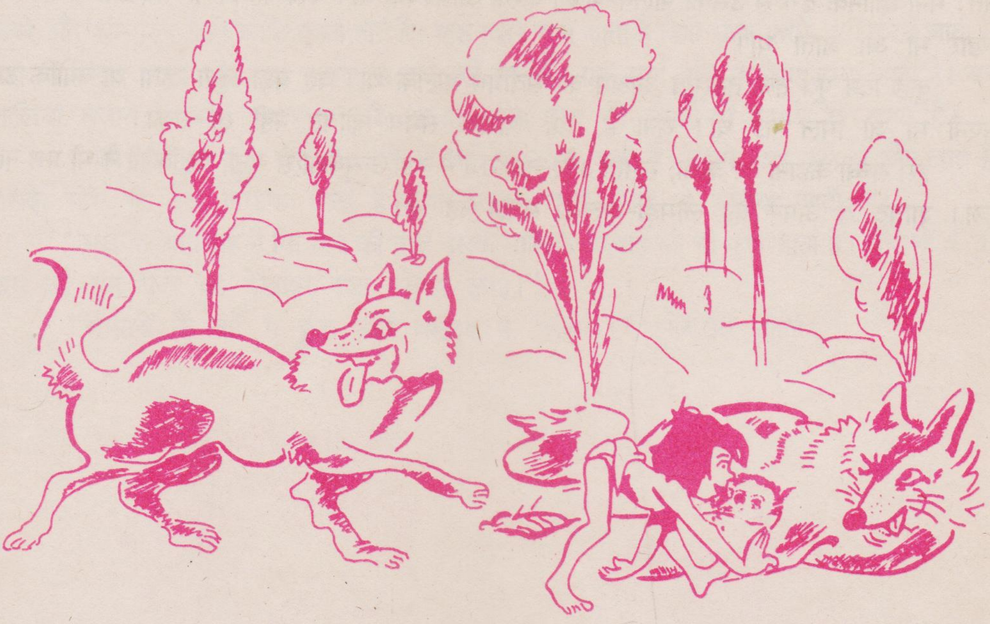
उक्त घटना राजेन्द्र आश्रम झाबुआ के अध्यक्ष श्री चुन्नीलाल महाराज ने एक भेंटवार्ता में हमें बताई। श्री महाराज की देखरेख में भारतीय आदिम जाति सेवक संघ का एक आश्रम अलीराजपुर तहसील में चल रहा था जिसमें भील, भिलाला, धानक आदि जनजातियों के 40 बच्चे शिक्षा पा रहे थे। यह तहसील अपराधों के लिए काफी नाम कमा चुकी है। शायद इसीलिए यहां 4 सेशन जज तथा 2 अतिरिक्त न्यायाधीश मध्य प्रदेश शासन द्वारा नियुक्त किए गए थे।

लोमड़ी-बालक का पकड़ना मानव-इतिहास तथा खोज की तीसरी घटना है जो इस पुस्तक के लेखक

को अपनी यात्रा में देखने को मिली। रामू भेड़िया-बालक की खबरें पत्र-पत्रिकाओं में खूब छपी थीं तथा मानव-वैज्ञानिकों ने उस पर शोध कार्य भी किया किन्तु लोमड़ी-बालक की खोजबीन पता नहीं किसी ने अभी तक क्यों नहीं की?

लोमड़ी-बालक को पकड़ने तथा उसे दूसरे बच्चों का अनुकरण करने के बारे में विस्तृत जानकारी देते हुए श्री चुन्नीलाल बोले—

''आश्रम के कुछ बालक जंगल से लौट रहे थे कि उन्हें रास्ते में एक लोमड़ी खड़ी मिली। पास ही एक बिलनुमा गुफा थी जिसमें एक दूसरी लोमड़ी किसी बालक को दूध पिला रही थी। उन्होंने समझा कि लोमड़ी गांव के बालक को उठा लाई है तथा उसे मारकर खा जाना चाहती है। किन्तु जब दूसरी लोमड़ी को



भीतर जाकर दूध पिलाते देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा कि वह लोमड़ी उसे चूम रही है और बच्चा भी अपनी पशु-मां से लिपट रहा है।

''आश्रम के एक आदिवासी बालक मदनसिंह को लोमड़ी की आवाज बनानी आती थी। उसने कुछ फासले पर लोमड़ी की आवाज में बोलना शुरू कर दिया। दोनों लोमड़ियां उस तरफ चल दीं। बच्चों ने मौका देखकर लोमड़ी-बालक को पकड़ लिया। उसने कुछ बालकों को दांत भी मारे, किन्तु इतने सारे बालकों से बचकर कहां जाता!

''लोमड़ी-बालक आश्रम आ गया। वहां के शिक्षकों ने उसे वात्सल्य भरा प्यार दिया। श्री चुन्नीलालजी की पत्नी उसे अपने पास सुलातीं। काफी दिनों तक वह अपने चारों हाथ-पैरों के सहारे चलता रहा, खड़ा-खड़ा विष्ठा करता तथा लोमड़ी की तरह बोलता। जंगल में नंगा रहने के कारण उसकी त्वचा खुरदरी हो गई थी।

''दोनों लोमड़ियों ने जब अपना बालक बिल से गायब पाया तो वे उसे ढूंढने चल पड़ीं। वे आश्रम पहुंच गई, किन्तु बेचारा पशु क्या करता ? लाचार था। वे एक सप्ताह तक प्रतिदिन वहां जातीं और रात-रात भर रोतीं। उधर लोमड़ी-बालक का भी यही हाल था। वह भी अपनी जंगली माताओं से मिलने के लिए छटपटाता तथा खूब रोता। अंततः पशु-जीवन का वह अध्याय समाप्त हुआ।

लोमड़ी-बालक का नाम तनसुख रखा गया। महाराज की पत्नी ने उसे कपड़ा पहनना सिखाया, पैरों के बल चलना सिखाया तथा थाली में शुद्ध-सात्विक भोजन करने की आदत डाली।

मानव-भाषा में उसने जो पहला शब्द सीखा, वह था 'मां' तथा 'बा'। तनसुख आज मां बोलता ही नहीं, लिखने भी लगा था। वह आश्रम में पढ़ता तथा अपने मित्रों के साथ खेलता। उसको सामान्य जीवन में लाने के लिए शुरू में काफी दिक्कतें आई थीं। उसे जब नए वातावरण में रखा गया तो वह घबराया हुआ था। अतः मनोवैज्ञानिक ढंग से उसका पालन-पोषण करना आवश्यक था। वस्त्र पहनने के बाद उसे कभी-कभी बुखार भी आ जाता था।

कुछ दिन पूर्व तक तनसुख आश्रम का सर्वप्रिय बालक था। वह बड़ा खुश रहता था क्योंकि उसे अपनी मां जो मिल गई थी। सुना है, वह अधिक समय जीवित नहीं रह सका।

इस सच्ची कहानी को ऋचा, समता और लोकराज ने बड़ी उत्सुकता से सुना, पर किसी ने भी प्रश्न नहीं पूछा। शायद वे अपने को लोमड़ी-बालक समझ रहे थे।

९. काला पानी

दीवाली के बाद गोधन का त्यौहार था।

ऋचा आज बड़े मूड में थी। बोली—"पापा क्या कोई ऐसा भी कबीला है, जहां गाय की पूजा होती हो और गोधन का त्यौहार मनाया जाता हो?"

मैंने सिर हिलाकर कहा—"हां है, सुनो। बंगाल और बिहार के संथालों में यह रिवाज मिलता है। उनके यहां सोहाराय त्यौहार मनाया जाता है जिसमें गाय की पूजा की जाती है। किसी नदी के किनारे संथाल बच्चे और स्त्री-पुरुष स्नान करके एकत्र होते हैं। एक स्थान चुना जाता है जिसे साफ करके वेदी बनाई जाती है। उस पर सिंदूर, आटा और कुछ चावल के दाने रखे जाते हैं। एक मुर्गा बलि के लिए लाया जाता है। बच्चे तालियां बजाते हैं और कुकड़ू-कूं की आवाज गाय-पूजा की तैयारी में गायब हो जाती है।

"गाय की पूजा शुरू होती है। उसे भी वेदी पर लाया जाता है। उसके पांव जल से धोए जाते हैं। उसके सींग पर तेल लगाया जाता है तथा उसका शरीर सिंदूर से सजाया जाता है।

"मजे की बात यह है कि गाय की तरह उसके मालिक चरवाहे को भी पूजा जाता है। संथालों के यहां श्रम की इस पूजा को देखकर बड़ा अच्छा लगा।"

"संथालों के बारे में कुछ और बताइए न, अंकल!" लोकराज बोला।



''संथाल प्रायः शाकाहारी होते हैं। उनके बच्चे घर के काम में हाथ बटाते हैं। आजकल स्कूल भी जाने लगे हैं। पर इन लोगों में अंधविश्वास बहुत है। जादू-टोने में उनका अधिक विश्वास है। बीमार बच्चे को ओझा के पास ले जाना ठीक समझते हैं। डाक्टर या वैद्य को दिखाना उचित नहीं समझते।''

समता बोली, ''अच्छा अंकल, आप पिछली बार टिहरी गढ़वाल गए थे, तो जता रहे थे कि वहां दुर्योधन की पूजा जूतों से होती है। क्या यह सही है?''

मैंने कहा, ''बिल्कुल ठीक है। दुर्योधन की पूजा क्या तुम संथालों के चरवाहे की तरह कराना चाहती हो? तुम्हें एक मजेदार बात और बताऊं। वहां एक पाप देवता भी है। विशेष अवसरों पर उसकी भी खूब धुनाई की जाती है, पर नाम उसे पूजा का ही दिया जाता है।''

''पर इससे क्या फर्क पड़ता है, पापाजी!'' ऋचा बोली—''पूजा जूतों से हो या फूलों से, पूजा तो पूजा ही है।''

तीनों बच्चे हंस पड़े।

कुछ देर सब मौन रहे।

समता ने कहा—

''अंकल, सुना है, अंडमान निकोबार की जनजातियों के बच्चे नंगे रहते हैं। वे बड़े खतरनाक होते हैं। इस क्षेत्र को कभी काला पानी कहा जाता था। जहां स्वतंत्रता सेनानी काले पानी की सजा काटते थे। सैलूलर जेल यहीं पर है।''

मैंने कुछ याद करते हुए कहा—

''हां बेटे, किन्तु सभी ऐसे नहीं हैं। वहां लिटिल अंडमानीज के बच्चों के लिए सरकार वस्त्र भी देती है तो भोजन भी। इनकी संख्या केवल 20-25 रह गई है। मैं जब उनके मुखिया लोका से मिला था, तो ऐसा लगा था कि ये लोग ह्रास की ओर हैं और शीघ्र ही समाप्त हो जाएंगे। लोका भी अब परलोक चला गया।

''हां, जारवा, शोम्पेन और अन्य आदिवासियों की स्थिति ऐसी नहीं है। ये जनजातियां बड़ी शक्तिशाली



हैं। जारवा तो बिल्कुल नंगे रहते हैं। उनके तीर का निशाना कभी खाली नहीं जाता। एक बार मेरी समुद्री बोट उनके क्षेत्र के पास से गुजर रही थी कि अचानक एक तीर आया। तभी सागर से एक मछली उछली। तीर मछली को लग गया। हम सुरक्षित पोर्ट ब्लेयर लौट आए। यहां जब ललिताप्रसाद विद्यार्थी आए थे, तो जारवाओं से भेंट करके गए थे। मैंने तो बस दूर से ही दर्शन किए। हां, यहां नृविज्ञानी खोज करने आते हैं और बड़ी मुश्किल से बचकर घर वापस लौटते हैं। सरदार बख्तावरसिंह से बात हुई थी जो जारवाओं के बीच रहे हैं। रोंगटे खड़े हो जाते हैं उनके संस्मरणों को सुनकर। इन जनजातियों के अतिरिक्त अभी सैकड़ों जनजातियां हैं जिनके बच्चों से मिलकर तुम्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा। उरांव, हो, खासी, जयंतिया, खस, किन्नर, पंगवाल, भोटिया, आदि कितने ही आदिवासी समाज हैं जिनके बच्चे प्रकृति के आंगन में पलते हैं, बड़े होते हैं और कुम्हलाए पत्तों की तरह अनाम झर जाते हैं।

''हमारा देश तब तक विकसित नहीं कहा जा सकता, जब तक इन उपेक्षित वर्गों की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता।''

10. घुमंतू रस्सी

मैं एक पुराना चित्र बच्चों को दिखाने लगा तो ऋचा बोली—

"पापा, इन बच्चों ने अपनी कमर पर इतनी लम्बी रस्सी क्यों बांधी है? ये तो जादूगर के बच्चे दिखाई पड़ते हैं!"

इसी बीच समता और लोकराज आ गए। समता ने वहां के बच्चों के बारे में तरह-तरह के सवाल करने शुरू कर दिए—

"ये बच्चे रस्सी ही क्यों बांधते हैं?"

"ये स्कूल में पढ़ने जाते हैं या नहीं?"

"उनके मां-बाप उन्हें कभी डांटते हैं या नहीं?"

मैंने बतलाना शुरू किया—

"इस चित्र में दो छोटी लड़कियां अपनी कमर पर बोझा लादे खड़ी हैं। बगल में एक पांच साल का छोटा-सा बालक भी खड़ा है। इनकी कमर में लगभग 50 फुट का ऊनी रस्सा बंधा हुआ है। इस रस्से को ये बच्चे—'शिव री सेली' कहते हैं, जिसका अर्थ शिवजी की निशानी होता है। इन बच्चों के माता-पिता शिवजी के उपासक हैं। जैसा कि बहुत-से लोग मानते हैं कि शिव के गले में सर्प पड़ा रहता था, उसी तरह ये लोग भी अपनी कमर पर रस्सा बांधे रहते हैं। लेकिन यह बात तो उनके बड़े-बूढ़े कहा करते हैं। सही बात तो यह है कि इस रस्से से उन्हें बोझा उठाने में सहायता मिलती है। कमर पर रखा सामान रस्से के ऊपर टिका रहता है।

"रात को इस रस्से से ये बच्चे अपनी भेड़-बकरियां बांध देते हैं। सोते समय तुम रुई का बढ़िया तकिया सिर के नीचे रखते हो न, लेकिन इन बच्चों के लिए यह रस्सा ही तकिए का काम देता है। जब ये बच्चे प्रवास में होते हैं तब रात्रि को किसी गुफा में सोने के लिए चले जाते हैं। घास-फूस के बिछौने और रस्से के सिरहाने पर ये खर्राटे भरने लगते हैं। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि अगर ये इस रस्से को बांधना बंद कर दें तो इनके पेट में दर्द रहने लगेगा।"

"ये बच्चे रहते कहां हैं?" लोकराज ने पूछा।

"हिमालय पर्वत में गद्दी जनजाति रहती है। ये लोग साल के छह मास खेती-बाड़ी में लगे रहते हैं और शेष छह महीने खानाबदोशी का जीवन बिताते हैं। ये लोग हिमाचल प्रदेश के चम्बा और कांगड़ा जिलों में रहते हैं किन्तु भरमौर इनका प्रमुख निवास स्थान है। सर्दियों में जब बर्फ पड़ जाती है तब ये लोग अपने रेवड़ों को लेकर निचली पहाड़ियों पर आकर रहने लगते हैं। इनके बच्चे अपने माता-पिता की भांति कमर पर बोझा लादकर चलते हैं। तुम तो अपने बस्ते को स्कूल से घर तक लाने में मुसीबत समझते हो लेकिन इन बच्चों को देखो—कितने मेहनती हैं ये। पांच साल का बच्चा भी 3-4 किलो वजन उठाकर पहाड़ों की खड़ी चढ़ाई पार करता है। इन्हें हिमालय की भयंकर घाटियां, नदी-नाले और बियाबान जंगलों को पैदल चलकर पार करना पड़ता है।

"समता ने पूछा था कि क्या वे स्कूल में भी पढ़ने जाते हैं? बच्चो, तुम जिस प्रकार की सुख-सुविधाओं में शिक्षा प्राप्त कर रहे हो, वे सब इन बच्चों के स्वप्न में भी नहीं आ सकतीं। इनके माता-पिता अनपढ़ और धर्म-भीरु होते हैं। एक बार जब मैंने एक गद्दी से पूछा कि वह अपने लड़के को स्कूल क्यों नहीं भेजता, तो वह बोला—मैं तो अपने बच्चे को स्कूल भेजना चाहता था, लेकिन जब चेले से आज्ञा लेने गया तब उसने साफ मना कर दिया। वे पुजारी को चेला कहकर पुकारते हैं।

"एक और गद्दी ने मुझसे कहा—तुम आज हमारी लड़कियों को स्कूल भेजने को कहते हो, तो कल हमारे भेड़ के बच्चे को भी स्कूल जाने को कहोगे। यह कैसे हो सकता है, बाबूजी?"

सब बच्चे हंस पड़े।

मैंने बात आगे बढ़ाई—"ये बच्चे अगर पढ़ना भी चाहें तो खानाबदोश मां-बाप इनके रास्ते में अड़चन डालते हैं। जहां कहीं स्कूलों में बच्चे पढ़ते भी हैं तो उनके मां-बाप छह-सात कक्षा के बाद उन्हें वहां से हटा लेते हैं, क्योंकि तब वे काम करने योग्य हो जाते हैं। इन बच्चों को आंखमिचौनी, कबड्डी और गिल्ली-डंडे जैसे खेल पसंद हैं।

"ये बच्चे इतने परिश्रमी और आज्ञाकारी होते हैं कि अपने माता-पिता से कभी मार नहीं खाते। इनका रंग गेहुआ, नाक-नक्श आकर्षक और स्वास्थ्य अच्छा होता है। ये ऊन का मोटा लबादा पहनते हैं। लड़कियां



घघरी पहनती हैं। लड़के पहाड़ी रंग का कोट पहने रहते हैं। मक्का की रोटी और ऐणं का साग इनका प्रिय भोजन है। वैसे ये मांस भी खाते हैं।

"यहां हम गुज्जर, बकरवाल, भोटिया बच्चों का जिक्र भी करना चाहेंगे। इन बच्चों का जीवन भी लगभग गद्दी बच्चों जैसा ही होता है। अंतर है तो इतना कि हिमालय के गुज्जर और बकरवाल इस्लाम को मानते हैं जबकि गद्दी हिन्दू-धर्म के अनुयायी होते हैं।"

बड़े उत्साह से समता बोल उठी—''अंकल, क्या हम भी इन घुमंतू बच्चों की भांति हिमालय पर चढ़ सकते हैं? हमें इनके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। क्या वहां कोई मेरी सहेली भी बन सकती है?''

''हां, क्यों नहीं बेटे, दुनिया में कोई काम असंभव नहीं होता। कठिन भले ही हो। पहाड़ पर चढ़ना कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ा मजा आता है जब चढ़ाई के बाद किसी झरने का ठंडा पानी पीने को मिलता है। पर्वतों की प्राकृतिक सुंदरता मन को मोह लेती है और चढ़ाई की थकान स्वयं दूर हो जाती है। ये बच्चे स्वयं भी मित्रता के लिए हाथ बढ़ाते हैं, इसलिए तुम्हें वहां आसानी से एक नहीं, अनेक सहेलियां मिल सकती हैं। हां तो, तुम्हें इन लोगों के बारे में एक कहावत भी सुना दूं—

गद्दी मित्तर भोला
दिंदा टोप्पा
ते मंगदा चोला।

''इसका अर्थ यह है कि गद्दी मित्र तो सीधा-सादा होता है किन्तु यदि तुम उसकी टोपी लेना चाहो तो बदले में तुम से चोला (कोट) मांगेगा। लेकिन यह बात पुरानी पड़ गई है, इसलिए ये लोग अब बदलते जा रहे हैं।

''गद्दी लोगों में एक और विचित्र प्रथा देखने को मिली। वहां भांजे का स्थान मामा से बड़ा माना जाता है। भांजा चाहे 8 दिन का हो या 8 साल का और मामा चाहे अस्सी साल का हो, पर उसे अपने भांजे के चरण जरूर छूने पड़ेंगे। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि तुम अपने मामा से कहो कि वह भी तुम्हारे चरण छुए। वास्तव में हर प्रदेश तथा समाज की अपनी-अपनी प्रथाएं होती हैं जिनका हमें सम्मान करना चाहिए।

''ये लोग शिवजी के उपासक हैं। इनका धर्म जनजातीय सांचे में ढला हुआ है। प्रत्येक धार्मिक अवसर पर बकरा काटकर उसकी बलि चढ़ाना इनके लिए मामूली-सी बात है। इनके देवी-देवता मांस के शौकीन हैं। गूंगा, कैलू, वीर आदि देवी-देवता इनके इष्ट हैं। जादू-टोने में इनका अधिक विश्वास है। बीमारी का इलाज डाक्टर या वैद्य की अपेक्षा ये चेला (ओझा) से कराना अधिक अच्छा समझते हैं।

''इनके गांव प्रायः 7000 फुट की ऊंचाई पर बसे होते हैं। भरमौर जाने के लिए रास्ता कठिन है और उसके आगे खड़ी चढ़ाइयां हैं। यहां मार्च-अप्रैल के महीनों में जाना अच्छा होता है क्योंकि बरसात में जमीन खिसकने तथा सर्दियों में बर्फ गिर जाने के कारण रास्ते खराब हो जाते हैं।

''मैंने एक गद्दी बालक से जब यह पूछा कि क्या उसने कभी रेलगाड़ी में भी यात्रा की है तो वह मेरी (उस समय बढ़ी हुई) दाढ़ी की तरफ देखते हुए बोला—''बाबूजी, हम तो गुल्ली-डंडा खेलते हैं। दाढ़ी तो आपकी है।''

मेरे साथ तीनों बच्चे खिलखिलाकर हंस पड़े।

''मोर का नाच तो अभी पूरा नहीं हुआ, अंकल!'' समता बोली।

मेरा उत्तर था, ''अभी बहुत-से मोरों-से कबीले हैं, जहां तुम्हें ले जाना था। अब तुम बड़े होकर वहां जाना। और हां, इस देश के उन घुमंतू बच्चों के देश भी जाना, जो डेढ़ हजार वर्ष पूर्व भारत छोड़कर योरोप की तरफ निकल पड़े थे। वे आज भी पश्चिम के कई देशों में भटक रहे हैं। इन्हें जिप्सी या रोमा के नाम से पुकारते हैं। भारत को ये बच्चे 'बारोथान' यानी 'बड़ा स्थान' कहते हैं। गाड़िया लुहारों की तरह ये एक जगह नहीं रुकते। इनके बारे में तुम्हें अवश्य जानना चाहिए।''

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

